वर्ष - 24 अंक 100 जुलाई-सितंबर 2007

अनुक्रम

पुलिस विज्ञान

अंक

60वां स्वतंत्रता दिवस

कल्याणकारी राज्य और पुलिस की भूमिका 13
• *डा. नीरज दुबे, तृप्ति दुबे*

न्यायिकेतर संस्वीकृति का साक्ष्यिक मूल्य 21
• *दिनेश मोहन चड्ढा*

विलम्बित न्याय का पुलिस व समाज पर दुष्प्रभाव 26
• *ओमप्रकाश*

लोकतांत्रिक व्यवस्था और चुनाव 32
• *ओम प्रकाश 'दार्शनिक'*

संस्कारागार 36
• *श्याम सुंदर बिस्सा*

महिलाओं के साथ हिंसा तथा पुलिस 38
• *डा. ओमराज सिंह*

भारतीय नारी उत्पीड़न के सहस्त्र चक्र 42
• *डा. एस. अखिलेश*

सामाजिक सुरक्षा और जुर्म 50
• *महेंद्र सिंह अहलावत*

निदेशक (अनु एवं वि.) की कलम से द्वितीय अखिल भारतीय कारागार *डयूटी मीट* 53

'पुलिस विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार निजी हैं। इनसे पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली की सहमति आवश्यक नहीं।

अक्षरांकन एवं पृष्ठ सज्जा : रचना इंटरप्राइजिज, वी-8, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

पुलिस विज्ञान के गत अंकों में से कुछ प्रमुख विशेषांक

सत्यमेव जयते

BPRD

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

100 वां अंक

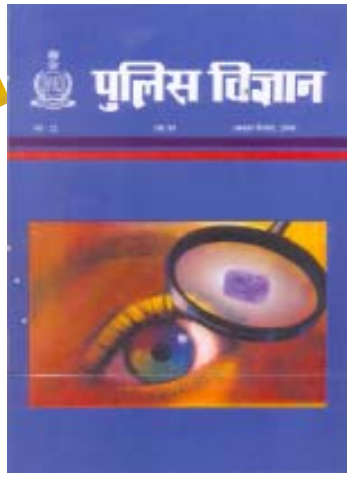

सत्यमेव जयते

शिवराज पाटील
SHIVRAJ V. PATIL
गृह मंत्री, भारत
HOME MINISTER, INDIA

25 जुलाई, 2007

संदेश

यह हमारे लिए अति हर्ष का विषय है कि गृह मंत्रालय के अन्तर्गत पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर पुलिस एवं जेल कर्मियों के बौद्धिक एवं व्यावहारिक ज्ञान को उन्नत करने हेतु हिन्दी भाषा में 'पुलिस विज्ञान' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

इसके सौवें अंक के प्रकाशन के अवसर पर मैं स्वयं एवं अपने मंत्रालय की ओर से पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि इतने वर्षों से ब्यूरो द्वारा चलाया जा रहा सतत् प्रयास आने वाले समय में और अधिक प्रभावी रहेगा व पुलिस एवं कारागार कर्मियों के लिए नित नई सूचनाएं, आवश्यक सामग्री व जानकारी निरंतर प्रदान करता रहेगा।

पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी शुभकामनाएं।

(शिवराज वि.पाटील)

मधुकर गुप्ता

गृह सचिव
HOME SECRETARY
भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
नोर्थ ब्लॉक, नई दिल्ली

संदेश

पुलिस–अनुसंधान एवं विकास–ब्यूरो, गृह–मंत्रालय द्वारा पुलिस एवं कारागार–प्रबंधन और न्यायालयिक विज्ञान से संबंधित विषयों पर हिन्दी में निकाली जा रही त्रैमासिक पत्रिका **"पुलिस–विज्ञान"** के एक सौ वें अंक के प्रकाशन के बारे में जानकर मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है । मुझे आशा है कि सरल हिन्दी में पुलिस एवं कारागार से संबंधित विषयों की समकालीन जानकारी के प्रचार–प्रसार से इन दोनों विभागों के ज़मीनी स्तर के कर्मचारी/अधिकारी वर्ग को इस पत्रिका के माध्यम से सतत महती सहायता प्राप्त होती रहेगी ।

इन व्यावसायिक विषयों में राजभाषा हिन्दी में लेखन को इस प्रकार से प्रोत्साहित करने के लिए ब्यूरो बधाई का पात्र है । पत्रिका के एक सौ वें अंक के प्रकाशन के अवसर पर मैं सभी पाठकों एवं संपादक–मंडल को अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ ।

(मधुकर गुप्ता)

किरन बेदी, भा. पु. से.
महानिदेशक

Kiran Bedi, I.P.S.
Director General

Tel. :011-24361849

पुलिस अनुसंधान एवम् विकास ब्यूरो
गृह मंत्रालय, भारत सरकार
ब्लाक 11, तल नं. 4
केन्द्रीय कार्यालय परिसर
लोधी रोड, नई दिल्ली–110 003

Bureau of Police Research and Development
Ministry of Home Affairs, Govt. of India
Block No. 11, 4th Floor, C.G.O. Complex
Lodhi Road, New Delhi-110 003
E-Mail : dgbprd@bol.net.in

दिनांक जुलाई, 2007

संदेश

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, द्वारा वर्ष 1982 से त्रैमासिक पत्रिका **"पुलिस विज्ञान"** का निरंतर प्रकाशन करता आ रहा है । यह पत्रिका पुलिस तथा कारगार प्रबंधन व न्यायालयिक विज्ञान, पुलिस प्रशिक्षण, यातायात, शांति व्यवस्था ,अपराध, न्याय-व्यवस्था व इनसे संबंधित हिन्दी में प्रकाशित लेख हिन्दी भाषी क्षेत्रों के थानों एवं कारागार स्तर पर सूचनाएं प्रदान कर रही है । इससे न केवल पुलिस व जेल कर्मी बल्कि आम जन भी लाभांवित हो रहा है । पुलिस तथा जेल की प्रगतिशील कार्यप्रणाली के बारे में जमीनी स्तर के अधिकारियों को सतत सूचित रखना अब एक व्यावसायिक आवश्यकता बन गया है । जिसकी पूर्ति इस पत्रिका के नियमित प्रकाशन से पूर्ण करने का प्रयास ब्यूरो द्वारा किया जा रहा है ।

पत्रिका के एक सौवें अंक के प्रकाशन पर मैं इसके संपादक मंडल तथा प्रेरणास्रोत विद्वान पाठकों को अपनी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं प्रदान करती हूं ।

किरन बेदी

(किरन बेदी)

राकेश जारुहर, भा.पु.से.
निदेशक (प्रशिक्षण)

Rakesh Jaruhar, I.P.S.
Director (Training)

Tel. : 24363054 (O)

पुलिस अनुसंधान एवम् विकास ब्यूरो
गृह मंत्रालय, भारत सरकार
ब्लाक 11, तल नं. 4
केन्द्रीय कार्यालय परिसर
लोधी रोड, नई दिल्ली–110 003

Bureau of Police Research and Development
Ministry of Home Affairs, Govt. of India
Block No. 11, 4th Floor, C.G.O. Complex
Lodhi Road, New Delhi-110 003

दिनांक - अगस्त, 2007

संदेश

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो को गर्व है कि भारत के सभी पुलिस व कारागार कर्मियों के लिए प्रकाशित की जा रही पत्रिका पुलिस विज्ञान जो वर्ष 1982 से प्रकाशित की जा रही है, का एक सौ वां अंक प्रकाशित होने जा रहा है । एक पत्रिका के सौवें अंक का निकलना न केवल पत्रिका, वल्कि उस विभाग की एक उपलब्धि है । इस पत्रिका ने पुलिस, कारागार व इससे संबंधित विभिन्न विषयों पर काफी सामग्री प्रस्तुत की है । इस पत्रिका के उज्जवल भविष्य की कामना करते हुए ब्यूरो के हिन्दी अनुभाग द्वारा किया जा रहा यह सतत्त प्रयास सराहनीय है । मैं इस अवसर पर हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं ।

(राकेश जारूहार)

संपादकीय

पुलिस विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका का जुलाई-सितंबर, 2007 का अंक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। जैसा कि संपादक मंडल का यह प्रयास रहता है कि पत्रिका में पुलिस, न्यायालयिक विज्ञान व अन्य संबंधित विषयों की प्रामाणिक व प्रासंगिक जानकारी प्रदान की जाए। अतः अपराधों को सुलझाने में पुलिसकर्मियों द्वारा किस प्रकार की कार्य प्रणाली अपनाई जाए, अपराधों से निपटने तथा अपराध होने की संभावनाओं से संबंधित कुछ ओजस्वी विचार तथा प्रैस की भूमिका पर वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों तथा समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो आम पुलिस-कर्मी के साथ सभी वर्ग के लिए उपयोगी होते हैं।

इस अंक में इस बार पुलिस-कर्मियों के लिए **कल्याणकारी राज्य और पुलिस की भूमिका, न्यायिकेतर संस्वीकृति का साक्ष्यिक मूल्य, विलम्बित न्याय का पुलिस व समाज पर दुष्प्रभाव, लोकतांत्रिक व्यवस्था और चुनाव, संस्कारागार, महिलाओं के साथ हिंसा तथा पुलिस, भारतीय नारी उत्पीड़न के सहस्त्र चक्र, सामाजिक सुरक्षा और जुर्म** से संबंधित लेख भी हैं।

पत्रिका के सुधी पाठक पत्रिका को और अधिक सूचनाप्रद व उपयोगी बनाने में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकते हैं। आशा है कि पत्रिका में सम्मिलित सभी लेख पाठकों को उपयोगी लगेंगे और वे अपने विचारों से संपादक मंडल को अवगत कराते रहेंगे। आपके विचारों का सहर्ष स्वागत है।

संपादक

कल्याणकारी राज्य और पुलिस की भूमिका

डा. नीरज दुबे

विभागाध्यक्ष-समाजशास्त्र विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बरेली, जिला-रायसेन (म.प्र.)

तृप्ति दुबे

(भाषा विज्ञानी स्वतंत्र लेखिका)
डी-2, 205ए, दानिश नगर, भोपाल (म.प्र.) 462026

आधुनिक युग में अधिकांश देश कल्याणकारी राज्य का दर्जा पा चुके हैं, जिनका उद्देश्य धर्म, जाति, क्षेत्र, लिंग तथा आयु के बीच भेदभाव रहित व्यवस्था की स्थापना करना है, जहां मानव को उनके मानव-अधिकार तथा सामाजिक न्याय व सुरक्षा की प्राप्ति हो। इस कार्य में पुलिस की भूमिका उल्लेखनीय है, जो कानून व व्यवस्था का सम्मान करने वालों तथा उसे तोड़ने वालों के बीच भेद करके कल्याण राज्य की उद्देश्य पूर्ति में अहम् भूमिका निभाती है।

पण्डित नेहरू ने कहा था कि "किसी राज्य को हम एक कल्याण राज्य तभी कह सकते हैं, जब उस पर कुछ समर्थ और संपन्न लोगों का ही अधिकार न हो, बल्कि जिसका उद्देश्य सभी वर्गों और खासतौर से दुर्बल वर्गों को अपना विकास करने तथा उन्हें अधिकतम सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना हो।" महात्मा गांधी ने भी कल्याण राज्य के बारे में अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा था कि "केवल वही राज्य एक कल्याण राज्य हो सकता है, जो पूरे समुदाय के कल्याण में योगदान करने वाली सेवाओं और कार्यों की व्यवस्था कर सकता हो। यह वह राज्य है जिसमें कानून और कानूनों को लागू करने वाले लोग जन साधारण के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करना अपना सर्वोपरि उद्देश्य मानते हैं।" संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों में यह उल्लेख है कि "राज्य एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करके जन कल्याण में वृद्धि करने का प्रयत्न करेगा, जिससे राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं द्वारा लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त हो सके।" न्यायाधीश दागला ने कहा था कि एक कल्याण राज्य वह है, जिसका व्यावहारिक उद्देश्य नागरिकों को प्राप्त स्वतंत्रता का न्यायिक ढंग से उपभोग करने के अवसर प्रदान करना है।" कल्याण राज्य की इसी अवधारणा के संदर्भ में "पुलिस की वर्तमान भूमिका किस सीमा तक कल्याणकारी राज्य के अनुकूल है", इसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

पुलिस से तात्पर्य : अंग्रेजी का शब्द पुलिस (Police) ग्रीक शब्द (Polis) से बना है, जिसका अर्थ है–रक्षा करने वाला। अर्थात् पुलिस का तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है, जिसका काम सामान्य व्यक्तियों के जनजीवन की रक्षा करना है। यह तभी संभव है, जब पुलिस को एक ऐसे संगठन के रूप में समझा जाए, जो राज्य के कानूनों को लागू करने में प्रशासन की मदद करता है, अपराध मुक्त समाज के निर्माण हेतु सदैव प्रयासरत् है, समाज में शांति और व्यवस्था बनाए रखता है तथा प्राकृतिक व मनुष्य जन्य आपदाओं से जूझने में आम इंसान की सदैव सहायता करता है। विभिन्न विधिवेताओं व समाजशास्त्रियों ने पुलिस की अवधारणा को स्पष्ट किया है। सदरलैण्ड एवं क्रेसी के अनुसार "पुलिस शब्द प्राथमिकरूप से राज्य के उन प्रतिनिधियों की ओर संकेत करता है, जिनका कार्य कानून तथा व्यवस्था को बनाए रखना एवं देश की नियमित आपराधिक संहिता को लागू करना है।" अर्थात् स्थानीय प्रशासन का मौलिक कार्य कानून व व्यवस्था को बनाए रखना है, जो पुलिस की सहायता के बिना संभव नहीं है, इसलिए पुलिस को अपराधी नियमों को

लागू करने वाले प्राथमिक संगठन के रूप में देखा जाता है। एन.वी.परांजपे के अनुसार– "पुलिस आपराधिक न्याय व्यवस्था से संबंधित एक तंत्र है, जिसका कार्य लोगों के जीवन तथा संपत्ति की रक्षा करना तथा उन्हें हिंसा, उत्पीड़न, शोषण और अव्यवस्था से बचाना है।" अर्थात् पुलिस को एक ऐसा संगठन माना जा सकता है जो "कानून व्यवस्था द्वारा सामाजिक शांति व समाज की सुरक्षा हेतु प्रतिबद्ध है तथा लोगों की रक्षा करने व उन्हें हिंसा, शोषण, उत्पीड़न से बचाने हेतु प्रतिबद्ध है। न्याय व्यवस्था की धुरी पुलिस है जिसके बिना न्यायालय व प्रशासन अपंग है।

पुलिस की संरचना : भारतीय संविधान के अनुसार पुलिस-संगठन राज्यों का विषय है। फलस्वरूप प्रत्येक राज्य का यह दायित्व है कि वह अपने अपने क्षेत्र में शांति और सुरक्षा को बनाए रखने के लिए पुलिस को संगठित करे। वहीं संविधान के अनुच्छेद 355 में यह व्यवस्था की गई कि राज्यों की सहायता हेतु केंद्र सरकार द्वारा भी एक बल की स्थापना की जाए जो केंद्रीय रिजर्व पुलिस के नाम से जाना जाता है। यद्यपि राज्यों का विषय होने के कारण विभिन्न राज्यों में पुलिस के संरचनात्मक संगठन में अंतर पाया जाता है, किंतु अधिकांश राज्यों में पुलिस के संस्तरण तथा उनकी कार्य पद्धति लगभग एक जैसी है।

भारत में पुलिस का वर्गीकरण नागरिक पुलिस व सशस्त्र पुलिस बल के रूप में किया जाता है। कार्य की प्रकृति और क्षेत्र के आधार पर पुलिस को छः मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया गया है :

(1) सामान्य पुलिस (2) यातायात पुलिस (3) गुप्तचर पुलिस (4) रेलवे पुलिस (5) स्त्री पुलिस तथा (6) केंद्रीय रिजर्व पुलिस। हाल में सरकार ने बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों को अपराध व आतंक की घटनाओं से सुरक्षा प्रदान करने के लिए "केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल" का भी गठन किया है।

पुलिस की भूमिका : कानून और व्यवस्था को बनाए रखकर कल्याणकारी राज्य के स्थायित्व में पुलिस की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रत्येक समाज में अपराधों को रोकने तथा कानून का उल्लंघन करने वाले लोगों को पकड़कर न्यायालय में प्रस्तुत करना पुलिस का मुख्य कार्य है। अर्थात् कानून का पालन करने की बाध्यता लोगों में पुलिस के भय से ही उपजती है और यही भय उन्हें अपराध करने से रोककर राज्य में अमन चैन कायम रखने में मुख्य भूमिका निभाता है। अतः बार्न्स तथा टीटर्स ने पुलिस को "सुरक्षा की प्रथम पंक्ति" के नाम से संबोधित किया है। किसी भी समाज की संरचना में उतार-चढ़ाव व जटिलताएं लोगों के संबंधों में हित प्रधान व औपचारिक भावों को बढ़ावा देती हैं। संबंधों की औपचारिकता के कारण कानून के उल्लंघन के तरीकों में भी परिवर्तन होता रहता है, जिससे निपटने के लिए पुलिस बल को समय-समय पर प्रशिक्षित करके, नए तरीकों का उपयोग करके कानून और व्यवस्था को बनाए रखने में सक्षम बनाया जाता है। क्योंकि कानून और व्यवस्था को बनाए रखना एक कठिन कार्य है।

प्रशासनिक कार्य : पुलिस का सबसे महत्वपूर्ण कार्य स्थानीय प्रशासन को सहायता देकर प्रशासनिक आदेशों का जनता द्वारा परिपालन को सुनिश्चित करना है। सार्वजनिक जीवन में शांति बनाए रखना, सार्वजनिक संपत्ति व औद्योगिक प्रतिष्ठानों की सुरक्षा करना, समाज के प्रमुख व्यक्तियों, बड़े नेताओं आदि की हिफाज़त करना यातायात व्यवस्था सुचारू रखना, विदेशी एजेंटों द्वारा की जाने वाली जासूसी को रोकना, रात के समय, नागरिक बस्तियों में गश्त लगाना व आपसी संघर्ष की घटनाओं को रोकना आदि पुलिस के प्रशासनिक कार्य है। टैफ्ट ने लिखा है : "वर्तमान समय में प्रभावकारी पुलिस की आवश्यकता और अधिक बढ़ गई है। सामाजिक संबंधों की जटिलता, बड़े शहरों का विकास

घातक हथियारों के प्रसार, अपराधियों के बड़े-बड़े संगठन, यातायात में होने वाली वृद्धि, अपराधी क्षेत्रों के विकास तथा अपराध के नए-नए तरीकों के कारण एक ऐसी पुलिस की आवश्यकता बढ़ गई है। जो अधिक सक्षम व प्रशिक्षित हो।" (जबकि सच तो ये है कि पुलिस की सक्षमता बढ़ाने हेतु बेहतर सुविधाओं, हथियारों, टेक्नीक ट्रेनिंग की आवश्यकता है।) अपराध कर्मों में संलग्न व्यक्तियों को वारंट या बिना वारंट के हिरासत में लेकर न्याय के लिए सक्षम अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करना तथा संदेह पूर्ण व्यक्ति की तलाशी व पूछताछ पुलिस का महत्वपूर्ण कार्य है।

आपराधिक मामलों का अन्वेषण : समाज की जैसे-जैसे प्रगति होती है, वैसे-वैसे आधुनिक संसाधनों का उपयोग करके अपराधी-तरीके जटिल व विशेषीकृत होते जाते हैं। जिनके निराकरण हेतु पुलिस को भी अपने तरीकों में बदलाव लाना पड़ता है। इसके लिए गुप्त-सूचनाओं की प्राप्ति हेतु पुलिस अपना एक मुखबिर नेटवर्क तैयार करती है, जिससे अपराध होने से पहले उसे रोकने का प्रयत्न किया जा सके व अपराध की योजना बनाने वालों को सबूत समेत गिरफ्तार किया जा सके। स्वयं पुलिस में विशेष रूप से प्रशिक्षित लोग अपराधी गिरोहों के बीच रहकर उनकी गतिविधियों व अपराध करने की उनके द्वारा अपनाई जाने वाली विधियों का पता लगाते हैं, जो जान जोखिम में डालने वाला कार्य है। अपराध की जांच में अंगुलियों के निशानों का अध्ययन करने वाले विशेषज्ञों तथा प्रशिक्षित कुत्तों की सहायता ली जाती है, जो पुलिस का महत्वपूर्ण अपराध निवारक कार्य है। संदेहास्पद व्यक्तियों को हिरासत में लेकर अपराध को होने से रोकना तथा आपराधिक कानूनों का पालन करवाना पुलिस के प्रमुख कार्यों में शामिल है।

कल्याणकारी कार्य : वर्तमान में कल्याण राज्यों में पुलिस के कार्यों में सार्वजनिक कल्याण कार्यों को भी शामिल कर लिया गया है। यथा-खोए हुए व्यक्तियों का पता लगाना, बाल अपराधियों पर नियंत्रण, विकलांग जनों की सहायता तथा दुर्घटना में घायल व्यक्तियों के उपचार की व्यवस्था, पकड़े गए बाल-अपराधियों के पुनर्वास की व्यवस्था आदि। यदि पुलिस के कल्याणकारी कार्यों को श्रेणियों में बांटे तो मध्यप्रदेश में–

(1) बच्चों के लिए : युनिसेफ व पुलिस के संयुक्त प्रयास से, बच्चों के मन से पुलिस की डरावनी छवि को दूर करने के उद्देश्य से **"बाल-मित्र"** योजना चालू की गई, जिसे जनता व बच्चों का उचित प्रोत्साहन मिल रहा है। इसके अंतर्गत सर्वप्रथम पुलिस कर्मियों को बच्चों के प्रति ऐसे व्यवहार का प्रशिक्षण दिया जा रहा है, जिससे शोषित बच्चा थाने में आकर अपनी व्यथा बताने में हिचके नहीं। वहीं बच्चों को थाने ले जाकर उन्हें पुलिस की प्रक्रिया व कार्यों से अवगत कराया जाता है, ताकि उनके मन में पुलिस व थानों के प्रति समाया भय निकल सके। बच्चों के लिए **"चाइल्ड-लाइन"** नामक निःशुल्क फोन व्यवस्था चालू की गई है, जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति या बच्चा स्वयं, किसी बच्चे पर होने वाले अत्याचार की न केवल शिकायत कर सकता है बल्कि अपनी संबंधित किसी समस्या का समाधान भी प्राप्त कर सकता है। इसके साथ ही लावारिस घूमने वाले, अनाथ या अपराध कर्मो, नशे आदि में लिप्त बच्चों के पुनर्वास की व्यवस्था कर संभावित अपराधियों को रोकने का कार्य भी आज पुलिस बखूबी निभा रही है। बच्चों में पुलिस के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से थाने स्तर पर बच्चों के लिए चित्रकला व निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। साथ ही उन्हें यातायात नियमों का ज्ञान व संबंधित प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

(2) स्त्रियों के लिए : सामाजिक-पारिवारिक विघटन की बढ़ती दर तथा व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति की

बढ़त ने पुलिस के दायित्वों में वृद्धि की है, जिसे पुलिस द्वारा स्वीकृति प्राप्त हुई है, परिणाम स्वरूप पुलिस आज एक कल्याणकारी भूमिका में दिखाई दे रही है। सदियों से चले आ रहे पुलिस थाने के भय को महिलाओं के दिल से निकालकर उन्हें अपनी पीड़ा और व्यथा का समाधान प्रदान करने हेतु **"महिला-थानों"** की स्थापना की गई है, जिसके अत्यंत सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं। अब महिलाएं न केवल अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को रोकने के लिए बल्कि स्वयं की सुरक्षा हेतु भी पुलिस का योगदान लेने बेझिझक आ रही हैं। वहीं पारिवारिक समस्याओं, घरेलू हिंसा जैसे अपराधों पर सकारात्मक नियंत्रण हेतु "परिवार परामर्श केंद्र" स्थापित किए गए हैं, जो जिला स्तर पर चलाए जा रहे हैं। यहां सामाजिक कार्यकर्ता, वकील व मनोवैज्ञानिक की सहायता ली जाती है, पीड़ित व पीड़क पक्ष को समझाने में। महिलाओं पर अत्याचार के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां कानून व न्यायालय तथा पुलिस का दबाव नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, अथवा प्रभावहीन साबित होते हैं। यहां परिवार में होने वाले छोटे-मोटे झगड़े, शराब पीकर मारपीट करने, दहेज हेतु सताने के ऐसे कई प्रकरण सलाह व परामर्श के द्वारा सुलझाए जाते हैं, जो आगे चलकर किसी अपराध का कारण बन सकते हैं। यदि पीड़ित महिला थाने आने में असमर्थ है तो वह स्वयं अथवा अपने किसी स्वजन के माध्यम से दूरभाव पर पुलिस थाने की **"हेल्प लाइन सेवा"** का लाभ उठाते हुए पुलिस की सहायता प्राप्त कर सकती है। यह सेवा 24 घंटे उपलब्ध है, जिसके माध्यम से पुलिस सूचना मिलते ही पीड़ित महिला की सहायता के लिए पहुंच जाती है। वहीं शासन द्वारा महिलाओं के प्रकरण, जैसे-तलाक, भरण-पोषण अलगाव आदि समस्याओं के त्वरित निराकरण हेतु प्रदेश के सात जिलों में "कुटुम्ब न्यायालय" स्थापित किए गए हैं। वहीं "जिला विधिक सहायता", अधिकारियों के माध्यम से निःशुल्क कानूनी सहायता महिलाओं को उपलब्ध कराने का प्रावधान राज्य शासन की महिला नीति में किया गया है।

(3) समाज के लिए : सामाजिक परिवेश की जटिलता नगरीकरण के साथ-साथ बढ़ती जा रही है, वहीं धर्म-निरपेक्ष देश होने के कारण विभिन्न जाति, धर्म व विचारों के मानने वाले समाज में एक साथ रहते हैं, जिनके हित आपस में टकराकर छोटे विवादों को उपजाऊ भूमि मुहैया कराते हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु शहरों में रहने वाले नागरिकों को एकजुट करके कुछ ऐसी "मोहल्ला सुरक्षा समितियों" का गठन किया गया है जो अपराधों की रोकथाम तथा कानून व्यवस्था बनाए रखने में पुलिस की सहायता करती है। इनके सदस्यों को परिचय पत्र प्रदान किया जाता है, तथा उनसे अपेक्षा की जाती है कि यह शहर में सौहादपूर्ण वातावरण व अमन चैन कायम रखने में पुलिस की सहायता करेंगे। जिम्मेदारी की गंभीरता को देखते हुए सदस्यों के चयन में सतर्कता बरतते हुए सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित व समाज पर प्रभाव रखने वाले ऐसे सच्चरित्र व्यक्ति चुने जाते हैं, जो स्वेच्छा से कार्य में जुड़े ताकि इनका व इनके व्यक्तित्व का पूर्ण लाभ पुलिस को कानून व्यवस्था के व्यवस्थापन में प्राप्त हो। वहीं सरकार की विकेंद्रीकरण व सत्ता जनता की भागीदारी की मूल भावना को पुष्ट करती है योजना–"आपकी पुलिस आपके पास"। जिसके अंतर्गत जनसमस्याओं का निराकरण मौके पर ही जन सहयोग के माध्यम से करने का प्रयास किया जाता है। इस हेतु पुलिस टीम जिले के ग्रामों में जाकर वहीं छोटे-छोटे जमीनी झगड़े, पारिवारिक विवाद व अन्य विवादों का निपटारा करती है। इसके लिए पुलिस टीम कार्य योजना बनाकर दिन निश्चित करती है, जिसका संबंधित क्षेत्र में पर्याप्त प्रचार भी किया जाता है, ताकि अधिक से अधिक जनता योजना का लाभ प्राप्त कर सके।

वहीं फरियादी अपनी बात रखने व उसे सिद्ध करने के पर्याप्त प्रबंध कर सके। गांव के पंच-सरपंच व प्रतिष्ठित नागरिकों का भी समस्याओं के समाधान में सहयोग लिया जाता है। इस योजना को जन सहयोग प्राप्त होने का एक प्रमुख कारण यह है कि कई ग्रामीण आर्थिक कारणों से व कई अशिक्षित होने के कारण भयवश जिले के न्यायालय या थाने में जाने का साहस नहीं जुटा पाते, जो भविष्य में हत्या व बलवे जैसे अपराधों का कारण बनते हैं। वहीं पुलिस को अपने समीप स्वयं आया देखकर उनका भय दूर होता है व समस्याओं को सामने रखकर वे उनका निराकरण करने में सफल होते हैं। पुलिस की इस योजना को हर वर्ग का सहयोग प्राप्त हो रहा है।

जनता व पुलिस के बीच भयमुक्त संबंध बनाने व उनमें सामीप्य लाने हेतु पुलिस द्वारा किए जा रहे हल्के-फुल्के प्रयास अत्यंत सराहनीय है, जैसे-सार्वजनिक स्थानों पर पुलिस बैंड द्वारा जनता के मनोरंजन हेतु कार्यक्रम प्रस्तुत करना, जिनमें देश भक्ति गीतों के साथ प्रसिद्ध फिल्मी गीतों की धुनों का समन्वय होता है।

पुलिस के कल्याणकारी कार्यों का समाज पर प्रभाव स्पष्ट देखा जा रहा है, यथा-महिलाओं में अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का खुलासा करने का साहस आया है, क्योंकि उसके लिए पुलिस थाना व महिला पुलिस अधिकारी उपलब्ध हैं। वहीं चाइल्ड लाइन के माध्यम से बाल-शोषण व लावारिस बच्चों के पुनर्वास की बहुत सी घटनाओं का निराकरण किया गया है।

जमीनी विवाद व अन्य विवादों को "आपकी पुलिस-आपके पास" योजना के तहत निबटाकर भविष्य में होने वाले गंभीर अपराधों में कमी हो रही है। किंतु एक अरब से ज्यादा की जनसंख्या वाले व विशाल भौगोलिक क्षेत्र वाले देश में समस्त समस्याओं का समाधान आसान नहीं है, वहीं पुलिस के मार्ग की बाधाएं उन्हें और दुरूह बनाती हैं।

पुलिस की कल्याणकारी भूमिका में बाधाएं :

पुलिस तंत्र अपना पूर्ण बल समाज में होने व हो सकने वाले अपराधों को रोकने, समाज के प्रत्येक सदस्य को सुरक्षा प्रदान करने व विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से उन्हें समस्याओं से उबारने में लगा रहा है, फिर भी यदि जनता पुलिस को आतंक का पर्याय मानती है, तो उसके कारणों को ढूंढ़ना व उनका निराकरण करना प्रथम शर्त होनी चाहिए। भोपाल में मानव अधिकार दिवस पर सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश आर.सी. लाहोटी ने माना कि - "मानव अधिकारों के उल्लंघन की सबसे ज्यादा शिकायतें पुलिस प्रशासन के खिलाफ आती हैं तो इसमें पुलिस की गलती नहीं, पुलिस संगठन जिस कानून के मुताबिक चल रहा है वह अंग्रेजों के जमाने का है। जरूरत इसमें बदलाव की है। पुलिस कर्मी कैसे हालात में काम करते हैं, वे ही जानते हैं। इसके अलावा जेल और न्याय व्यवस्था में भी बदलाव होना जरूरी है।" मनोवैज्ञानिक कुमोदिनी शर्मा के अनुसार–"पुलिस अफसर तभी ठीक ढंग से लोगों की मदद कर पाएंगे, जब तनाव में नहीं रहेंगे। इसके लिए आसपास के माहौल और अपने व्यवहार को मधुर करना होगा।"

वेतन संबंधी : पुलिस कार्य दुरूह व कार्य के घंटे अनिश्चित होते हैं। अपराधों से लड़नें की प्रक्रिया के दौरान वे जोखिम का सामना करते हैं। इन सारी कठिनाइयों का उचित मुआवजा उन्हें वेतन के रूप में प्राप्त नहीं होता। आज एक सिपाही का वेतन उसके कार्य के अनुसार इतना पर्याप्त नहीं है कि वह अपने घर की आवश्यकताओं की चिंता से मुक्त रहकर कार्य में ध्यान लगा सके। यही कारण है कि भ्रष्टाचार का सहारा लिया जाता है अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए। यदि कार्यानुरूप उचित वेतन भत्ते प्राप्त हों तो कोई कारण नहीं कि भ्रष्टाचार में कमी न

आ सके या पुलिसकर्मी घर की चिंता से मुक्त हो कार्य न कर सके। पुलिस के भ्रष्टाचार मुक्त होने का फायदा यह होगा कि जनता को निष्पक्ष न्याय की संभावना प्रबल होगी व आम जनता का सहयोग व विश्वास पुलिस को प्राप्त होगा।

कार्यक्षमता संबंधी : पुलिस का संरचनात्मक संगठन मूल रूप से ब्रिटिश शासन के अंतर्गत सन् 1861 में पारित होने वाले पुलिस एक्ट पर आधारित है। तथ्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पुलिस के ढांचे में सुधार लाने के लिए कई आयोग गठित किए गए, किंतु अपेक्षित परिणाम प्राप्त न हो सके। अर्थात् पुलिस की संरचना को सामाजिक सुरक्षा के एक साधन के रूप में इस प्रकार विकसित करना होगा कि आम जनता उसे अपने बीच का एक महत्वपूर्ण अंग माने। पुलिस की कार्य कुशलता में सुधार हेतु अत्यावाश्यक है कि उसे राजनीतिक दलों के दुष्प्रभाव से मुक्त रखा जाए। सरकार बदलने के साथ प्रायः राजनीतिक दल बदलते हैं, व प्रत्येक दल की विभिन्न रूचि, पसंद व हित होते हैं। जिनका पुलिस पर थोपा जाना, पुलिस कर्मियों, को दिग्भ्रमित करता है। जबकि पुलिस एक अलग तंत्र है, जिसका सीधा संबंध अपराध, अपराधी व समाज की सुरक्षा से हैं। अतः राजनीतिक दलों की सरकार में बदलने वाली भूमिका से पुलिस तंत्र को मुक्त रखना चाहिए। वहीं अपराधियों की धरपकड़ व उनके खिलाफ कार्रवाई को सामाजिक मुद्दा मानते हुए उसमें राजनीतिक हस्तक्षेप को रोका जाना चाहिए। क्योंकि जब मुश्किल से पकड़े गए जघन्य अपराधी को राजनेता अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर छुड़ा ले जाते हैं तो उन्हें पकड़ने में जान जोखिम में डालने वाले पुलिस कर्मी स्वयं को ठगा हुआ महसूस करते हैं व अवसाद तथा कुंठा का शिकार हो जाते हैं। पुलिस की निष्पक्ष छवि तो कलंकित होती ही है, पुलिस कर्मी का भी कार्य के प्रति मेहनत, ईमानदारी व आत्म विश्वास पर से भरोसा उठने लगता है, जिसके बारे में न जनता को कोई चिंता होती है न सरकार प्रभावशाली कदम उठाती है।

आपसी समन्वय संबंधी : विभिन्न पुलिस संगठनों, यथा-सामान्य पुलिस, रेलवे पुलिस, यातायात पुलिस के बीच उचित समन्वय होना आवश्यक है ताकि अपराधी उनकी पकड़ से बच न सकें। वहीं विभिन्न थानों के बीच कार्य क्षेत्र संबंधी मतभेद को मिटाना भी आवश्यक है, जिसका फायदा उठाकर कई बार अपराधी बच निकलते हैं। बल्कि उपस्थित पुलिस कर्मी को यह अधिकार देने चाहिए कि वह किसी थाने क्षेत्र का कर्मी बाद में है, पुलिस कर्मी पहले। अतः सामने पड़ने वाले अपराधी पर थाना क्षेत्र के बंधन से मुक्त होकर कार्रवाई कर सके, तत्पश्चात् संबंधित थाने को अपराधी सौंपा जा सकता है।

अपराध निरोध संबंधी : अनेक देशों की तरह भारत में भी ऐसे अपराध विशेषज्ञों की नियुक्ति की जा सकती है जो साधारण वस्त्रों में अपराध संभावित क्षेत्रों व व्यक्तियों पर निगाह रखें। ये अपराधियों की मानसिकता समझने के कारण अपराध होने से पहले ही अपराधियों को पकड़ने में सफल हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के शस्त्रों में प्रशिक्षण देकर इनकी कार्य क्षमता को और बढ़ाया जा सकता है, तथा इनका योगदान पुलिस बल की कार्य क्षमता में निश्चित ही वृद्धि करेगा। वहीं निरोध पुलिस के गठन से पुलिस की भूमिका को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। ज्ञातव्य है कि अपराध का बीजारोपण बाल अपराधों व किशोर अपराधों से होता है, जिन पर नियंत्रण निरोध-पुलिस का कार्य होगा। इन शब्दों पर समाजकार्य व मनोविज्ञान में प्रशिक्षित महिलाओं को प्राथमिकता दी जा सकती है जो आरंभिक स्तर पर ही अपराधी वृत्ति के बच्चों व युवाओं का उपचार करने में सहायक हों। पुलिस के इन प्रयासों से जनता में उसकी सकारात्मक व दोस्त की छवि बनेगी,

जो जनता से उनके तारतम्य को बेहतर बनाने का कार्य करेगी।

तनाव मुक्ति संबंधी : पुलिस के कार्य की दुरूहता ही उसे तनावग्रस्त करने वाली होती है उस पर समस्याओं का सामना उसे जटिल मानसिक परिस्थितियों में डाल देता है। पहली समस्या है, पर्याप्त स्टाफ की कमी। नियमानुसार प्रत्येक एक किलोमीटर की बीट के ऊपर छह कांस्टेबल और तीन हेड कांस्टेबल की ड्यूटी होनी चाहिए, लेकिन इसका पालन होता नहीं दीखता। पुलिस की संख्या तो पर्याप्त भी नहीं है जबकि जनसंख्या की तीव्र गति उन पर कार्य के बोझ को निरंतर बढ़ा रही है। बढ़ती जनसंख्या से शिक्षित बेरोजगारों की एक फौज खड़ी हो गई है जो दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपराध कर्मों का सहारा लेती है व जिसके तौर तरीके अत्यंत आधुनिक होते हैं। ऐसे में एक-एक पुलिस कर्मी को दस लोगों का कार्य करना पड़ेगा तो कार्य क्षमता व दक्षता कहीं न कहीं अवश्य प्रभावित होगी। दूसरी समस्या है, राजनैतिक आर्थिक प्रभुत्व वाले लोगों का दबाव। इस प्रकार के दवाब पुलिस की स्वतंत्र व निष्पक्ष कार्रवाई में बाधा डालकर उसे कुंठित व तनावग्रस्त बनाते हैं। कभी-कभी साधारण अपराधी की अधिक पिटाई या मौत की खबर सुनने में आती है, जिसका कारण प्रायः इसी प्रकार का तनाव व हताशा होती है। इस तरह की घटनाओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखकर उनका समाधान करना आवश्यक है न कि दंड देकर इति श्री कर लेना। तनाव मुक्ति हेतु अनावश्क दबाव से मुक्ति के प्रयास तो होने ही चाहिए साथ ही मानसिक विश्राम हेतु पुलिस के लिए भी अन्य विभागों की तरह नियमित अवकाश की व्यवस्था होनी चाहिए, जिसका प्रभाव न केवल पुलिसकर्मी, बल्कि उनके परिवारों पर भी सकारात्मक दिखाई देगा। इसके अलावा व्यायाम की नियमित व्यवस्था व तत्पश्चात् पौष्टिक रिफ्रेशमेंट की व्यवस्था होनी चाहिए, जो समाज की सुरक्षा का दायित्व वहन करने वाले प्रहरियों को मानसिक व शारीरिक स्फूर्ति प्रदान करे। तीसरी समस्या है, कार्मिक समस्या। पुलिस कर्मियों की शारीरिक क्षमता के साथ ही बौद्धिक दक्षता को भी महत्व दिया जाना चाहिए। वहीं प्रशिक्षण के दौरान उन्हें नैतिक आचारों, कानून व्यवस्था, अनुशासन व जन सहभाग के महत्व से परिचित कराया जाना चाहिए।

साधन-सम्पन्नता संबंधी : यह दुखद है कि भारत में पुलिस के पास खूंखार अपराधियों का सामना करने हेतु पर्याप्त मात्रा में हथियार, वाहन आदि की कमी है। जबकि अपराधी आजकल अत्याधुनिक महंगे हथियार व टेकनीक का सहारा ले रहे हैं। उनसे निपटने के लिए पुलिस कर्मियों को नवीन टेकनीक का प्रशिक्षण व अत्याधुनिक साधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए, क्योंकि उन्हें कई बार अपराधियों से सीधी टक्कर लेनी पड़ती है, जिसमें उनकी जान भी जा सकती है, यदि उनके पास अपराधी की टक्कर के साधन न हों तो। इस मामले में किसी भी प्रकार का समझौता स्वीकार्य नहीं हो सकता। खास तौर से ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की अत्यंत कमी महसूस की जा रही है। वहीं जासूस तंत्र/मुखबिरों पर खर्च बजट की कमी का सामना अकसर थानों को करना पड़ता है। इस हेतु विशेष प्रयास करना अत्यावश्यक है। जनसंख्या व बेरोजगारी की बढ़त से जनित अपराधों की रोकथाम हेतु मुखबिर तंत्र को मजबूत करना ही होगा और इस हेतु आवश्यक बजट का प्रावधान प्राथमिक खर्चों में शामिल किया जाना चाहिए। क्योंकि देखा गया कि वैसे भी पुलिस कर्मियों की तनख्वाह अपर्याप्त मानी जा रही है उस पर कार्य की पूर्ति हेतु उन्हें अपनी जेब से मुखबिर को पैसे देने पड़ते हैं।

यदि हम कल्याणकारी राज्य में सुख-शांति, सौहार्द्र और सुरक्षा की अबाध पूर्ति चाहते हैं, तो हमें पुलिस कर्मियों के मार्ग की बाधाओं को दूर करने हेतु त्वरित प्रयास करने ही होंगें। वस्तुतः तथ्य है कि तनाव रहित

सजग प्रहरी ही पूर्ण-सुरक्षा का आश्वासन है। वहीं पुलिस को नम्र व शक्ति संपन्न बनाना होगा ताकि अपराध को मिटाकर भयमुक्त समाज का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके, जो कल्याणकारी राज्य की प्रथम शर्त है। पुलिस के लिए अधिकार व संसाधनों का विस्तार अवश्य किया जाए, वहीं पुलिस को भी जनता के सेवक की भूमिका तथा कर्तव्यों के ईमानदार निर्वहन हेतु कृतसंकल्प होना होगा, तभी कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की पुष्टि संभव है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डा. राजीव गुप्त– डिप्रेशन से मुक्ति
2. दैनिक नवभारत : 10-12-2005
3. दैनिक नवभारत : 15-12-2005
4. नीरज दुबे : बढ़ता नक्सलवाद : पुलिस को चुनौती,
   पुलिस विज्ञान, जुलाई-सितम्बर 2000
5. नीरज दुबे/तृप्ति दुबे – व्यवसाय का रूप लेते अपहरण और फिरौती
   पुलिस विज्ञान, जुलाई-सितम्बर 2001 ❐

"जहां तक पुलिस के कार्य का संबंध है वे न तो मुसलमान हैं, न हिंदू और न सिक्ख हैं। वे केवल भारतीय हैं जो धर्म की ओर ध्यान दिए बिना दुखियों को पूरा-पूरा संरक्षण प्रदान करने की शपथ से बंधे हुए हैं। अपना कर्तव्य पालन करने से वे कम मुसलमान, हिंदू या सिक्ख नहीं हो जाएंगे बल्कि बेहतर मुसलमान, हिंदू या सिक्ख होंगे।"

—राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

न्यायिकेतर संस्वीकृति का साक्ष्यिक मूल्य

दिनेश मोहन चड्ढा

(विधि प्रवक्ता)
121-ए, जनकपुरी, सहारनपुर, 247001 (उ.प्र.)

यह मानवीय प्रवृत्ति है कि कोई भी सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति स्वेच्छया अपने हितों के विरुद्ध कथन नहीं करेगा तथा इसी का यह प्रत्यक्ष प्रभाव कहा जा सकता है कि अधिकांश आपराधिक प्रकरणों में वास्तविक अपराधी भी अपना अपराध स्वीकार करने की बजाए स्वयं को निर्दोष निरूपित करते हुए विचार किए जाने का दावा करते हैं चाहे भले ही उनका अंतर्मन भीतर से उन्हें इस अपराध कृत्य के लिए बारम्बार अपमानित ही क्यों न करता रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि वे स्वयंमेव दण्ड के भागी नहीं बनना चाहते बल्कि अंतिम स्तर तक इस बात के लिए निरंतर प्रयत्नशील बने रहते हैं कि येन-केन प्रकारेण न्यायालय से दोषमुक्त हो जाए। वस्तुतः यही वे मूल विचार हैं जो कि अपराध की संस्वीकृति करने में बाधक बनते हैं अर्थात् इसी भावना को दृष्टिगत रखते हुए अभियुक्त व्यक्ति अपराध की स्वीकारोक्ति करने के संबंध में सदैव अनिच्छुक बने रहते हैं और सत्यता जानने के बावजूद भी अपने दोष को प्रमाणित करने का भार आपराधिक न्याय प्रशासन के अभिकरणों पर अनावश्यक रूप से अधिरोपित कर देते हैं।

लेकिन कई अवसरों पर ऐसा भी देखने में आया है कि अभियुक्त अपने दोष को छिपाने की बजाए उसे जनसाधारण के समक्ष या अपने किसी मित्र, संबंधी या परिचित के सामने लिखित या मौखिक रूप में प्रत्यक्षतया स्वीकार कर लेते हैं। वास्तव में अभियुक्त द्वारा न्यायालय से बाहर की गई अपराध की यही स्वीकारोक्ति विधिक भाषा में न्यायिकेतर संस्वीकृति कहलाती है और इसके लिए अनेक कारण उत्तरदाई हो सकते हैं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं :

1. कुछ मामलों में अभियुक्त व्यक्ति का सरल या सहज स्वभाव अर्थात् उसका भोलापन ही उससे अपराध स्वीकार करवा लेता है।
2. अनेक बार अभियुक्त पश्चाताप करने की भावना से प्रेरित होकर अपने अपराध की संस्वीकृति करते हैं।
3. कई अवसरों पर ऐसा भी होता है कि अपराध की संस्वीकृति किसी अन्य व्यक्ति को बचाने के लिए अथवा किसी अन्य से कोई सहायता, आश्वासन या संरक्षण पाने की प्रत्याशा रखकर की जाती है।
4. कभी-कभी अभियुक्त प्रतिशोध की भावना से या उत्तेजनावश या भय के वशीभूत होकर भी संस्वीकृति कर लेते हैं।
5. कई बार अभियुक्तों का यह विचार होता है कि जो कुछ भी हुआ, वह उनके भाग्य में नियत था और इसीलिए वे उसका परिणाम अपने भाग्य पर छोड़ते हुए स्वयं द्वारा किए गए अपराध को सहर्ष ही स्वीकार कर लेते हैं।
6. इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि अभियुक्त ने संस्वीकृति स्वयं को गौरांवित अनुभव करते हुए की हो।

परन्तु व्यवहार में यह कदापि आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त ने जिस प्रकार स्वेच्छया अपना अपराध न्यायालय से बाहर किसी आम आदमी के समक्ष स्वीकार किया है ठीक वैसा ही आचरण वह न्यायालय के भीतर भी दर्शाए क्योंकि यह नितांत संभव है कि मामले के पश्चात् आवर्ती प्रक्रम पर विधिक परामर्श इत्यादि प्राप्त हो जाने के पश्चात् उसका मत परिवर्तित हो गया हो। आपराधिक विचारणों में जब कभी भी इस प्रकार की अनोखी

परिस्थितियां प्रकट होती हैं तब अभियोजन पक्ष अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए दोषारोपणों को साबित करने के लिए अभियुक्त द्वारा पूर्व में की गई इसी न्यायिकेतर संस्वीकृति का सहारा लेता है। यदि यह संस्वीकृति, लिखित रूप में है तो इसे प्रमाणित करने में कोई विशेष समस्या सामने नहीं आती है तथा न्यायालय भी आमतौर पर इसे साक्ष्यिक महत्व प्रदान करते हैं जब तक कि इसे अस्वीकार करने के लिए कोई विशिष्ट बाध्यकारी परिस्थिति विद्यमान न हो। लेकिन यदि संस्वीकृति का यह अभिलेख उपलब्ध नहीं है या नष्ट हो गया है या फिर संस्वीकृति अभिलिखित ही नहीं की गई है अर्थात् मौखिक रूप में है तब ऐसी अवस्था में अभियोजन पक्ष उस व्यक्ति को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करता है जिसके सामने उक्त संस्वीकृति की गई थी और तदनुसार वह व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित होकर यह मौखिक साक्ष्य देता है कि अभियुक्त ने अपना अपराध स्वेच्छया उसके समक्ष स्वीकार किया था।

इस परिदृश्य को देखकर प्रत्येक साधारण व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वभाविक है कि क्या न्यायालय एकमात्र इसी न्यायिकेतर संस्वीकृति के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहरा सकते हैं या इसे संपुष्टि के अभाव में संदेहास्पद मानते हुए इसकी पूर्णतया उपेक्षा कर दी जाएगी या फिर कहीं इस संस्वीकृति को इस कारण तो निरस्त कर दिया जाएगा कि यह न्यायालय के सामने नहीं की गई है।

इस विषयक वस्तुस्थिति यह है कि हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली के अन्तर्गत न्यायिकेतर संस्वीकृति का परिसाक्ष्य प्रस्तुत करने के संबंध में कोई भी विधिक वर्जन नहीं लगाया गया है परन्तु फिर भी व्यवहार में इसकी प्रामाणिकता, स्वीकार्यता एवं विश्वसनीयता को लेकर विधिशास्त्रियों में प्रायः मतवैभिन्नय देखने को मिलती है। विधिज्ञों के एक पक्ष का यह मानना है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति एक अत्यंत दुर्बल प्रकृति का साक्ष्य है और अभियुक्त की दोषिता या निर्दोषिता का निश्चय करते समय इस पर कदापि निर्भर नहीं रहा जा सकता क्योंकि प्रथमतया, यह न्यायालय से बाहर किसी प्राइवेट व्यक्ति या आम आदमी के समक्ष की जाती है जिसकी सत्यवादिता को जांचना कई बार एक दुष्कर कार्य बन जाता है, साथ ही ऐसी संस्वीकृति कभी भी अभियुक्त की सामान्य प्रतिक्रिया नहीं होती अर्थात् जब भी अभियुक्त अपने अपराध को स्वीकार करता है तब वास्तव में वह अपने सामान्य आचरण का प्रदर्शन नहीं करता बल्कि स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति के विरुद्ध जाकर कार्य करता है। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि अभियुक्त ने यह संस्वीकृति स्वेच्छा से न की हो अपितु किसी प्रकार के दवाब, लालच, धमकी, वचन या उत्प्रेरणा इत्यादि के फलस्वरूप की हो। इसी अनुक्रम में इस बात की सम्भावना से भी इंकार नहीं किया सकता कि जिस व्यक्ति के समक्ष संस्वीकृति की गई है वह न्यायालय में, अभियुक्त द्वारा उच्चारित किए गए शब्दों का दुरूपयोग न कर रहा हो या स्मृति की निर्बलता के कारण वास्तविक शब्दों को भूल न गया हो या फिर, उसकी ओर से संस्वीकृति में प्रयुक्त शब्दावली/भाषा को समझने में कोई त्रुटि न हुई हो। यहां तक कि ऐसा भी हो सकता है कि अभियुक्त ने वास्तव में कोई अपराध कारित ही न किया हो परंतु फिर भी अभियोजन साक्षियों ने जानबूझकर उसका अनावश्यक उत्पीड़न करने या उसे मामले में मिथ्या आलिप्त करने की मंशा से न्यायालय के समक्ष एक पूर्णतया कृत्रिम न्यायिकेतर संस्वीकृति प्रस्तुत कर दी हो।

इन समस्त आशंकाओं को बल, इस कारण भी मिलता है क्योंकि जिन मामलों में अभियोजन पक्ष आमतौर पर न्यायिकेतर संस्वीकृति का सहारा लेते हैं, उनमें प्रायः घटना का कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं रहा होता।

वस्तुतः इन्हीं प्रमुख तथ्यों को आधार बनाकर आलोचकगण न्यायिकेतर संस्वीकृति को सदैव शंका की

दृष्टि से देखते हैं और अतिरिक्त साक्ष्यों के समर्थन के अभाव में इस पर निर्भर रहना पूर्णतया असुरक्षित व जोखिम भरा मानते हैं।

जबकि इसके विपरीत मत धारण करने वाले विधिवेत्ता इस बात के प्रबल पक्षधर हैं कि न्यायिकेतर संस्वीकृति पर सहजतापूर्वक बिना किसी भय या संकोच के, यहां तक कि सम्पुष्टि के अभाव में भी दोषसिद्धि आधारित की जा सकती है। इनका यह मानना है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति पर ठीक उसी प्रकार से विचार किया जाना चाहिए जैसे कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों पर न्यायालयों द्वारा प्रमुख रूप से विचार किया जाता है अर्थात् न्यायिकेतर संस्वीकृति के संबंध में विचार करते समय हमें प्रथम दृष्टया ही यह उपधारणा नहीं कर लेनी चाहिए कि यह निर्बल प्रकृति का साक्ष्य होने के कारण अविश्वसनीय है बल्कि सभी परिस्थितियों पर समग्र रूप से विचार करने के पश्चात् यदि इसमें कोई त्रुटि नहीं पाई जाती है तो इसे अवश्य ही विशिष्ट साक्ष्यिक महत्व प्रदान करना चाहिए।

इसी अनुक्रम में, इन विधिवेत्ताओं की यह निश्चायक धारणा है कि यदि न्यायिकेतर संस्वीकृति की विश्वसनीयता या स्वीकार्यता का परीक्षण करते समय निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सकारात्मक रूप में प्राप्त होते हैं तो ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं है कि इस संस्वीकृति पर विश्वास न किया जाए। ये दिशा-सूचक प्रश्न इस प्रकार हैं :

1. क्या यह संस्वीकृति अभियुक्त द्वारा स्वेच्छा से की गई है?
2. जिन व्यक्तियों/साक्षियों के सामने यह संस्वीकृति की गई है, क्या वे समाधानप्रद रूप से विश्वास करने योग्य है?
3. क्या इस संस्वीकृति की सम्पुष्टि, मामले से सम्बद्ध अन्य परिस्थितियों एवं अभिलेख पर उपलब्ध दूसरी सुसंगत सामग्रियों से भी हो रही है?
4. क्या यह संस्वीकृति सत्यता पर आधारित है?
5. क्या यह संस्वीकृति घटना के तत्काल पश्चात् या बिना किसी असम्यक् विलम्ब के की गई है?
6. जिस भाषा में संस्वीकृति की गई है क्या साक्षी उसे भली-भांति समझने की क्षमता रखता था?
7. क्या यह संस्वीकृति किसी प्रकार के दबाव, लालच या उत्प्रेरणा इत्यादि से प्रभावित हुए बिना ही की गई है?
8. क्या अभियुक्त के पास न्यायिकेतर संस्वीकृति करने का कोई स्वाभाविक कारण या हेतु था?
9. क्या साक्षी द्वारा न्यायालय के समक्ष लगभग वही शब्द दोहराए गए हैं जो कि अभियुक्त द्वारा संस्वीकृति के समय कहे गए थे?

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर हां में प्राप्त होते हैं तो ऐसी स्थिति में विधिज्ञों का दूसरा पक्ष इस बात की अपेक्षा करता है कि न्यायिकेतर संस्वीकृति के परिसाक्ष्य के संबंध में कोई भी भ्रम न रखते हुए तत्काल इसे स्वीकार कर लिया जाए।

पूर्वोक्त दोनों मतों का प्रारम्भिक परिशीलन करने से प्रथम दृष्टया यह प्रतीत होता है कि ये एक-दूसरे का खण्डन कर रहे हैं जबकि वास्तविकता यह है कि यदि तार्किक दृष्टिकोण से देखा जाए तो तत्क्षण यह स्पष्ट हो जाएगा कि इनमें कोई भी प्रत्यक्ष विरोधाभास नहीं है बल्कि दोनों का ही परम उद्देश्य न्याय-हित में अभिवृद्धि करते हुए दोषी को दण्ड दिलाना और निर्दोष की सुरक्षा सुनिश्चित करना है।

इस परिप्रेक्ष्य में यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि हमारा आपराधिक विधिशास्त्र भी न्यायिकेतर संस्वीकृति का साक्ष्यिक मूल्य निर्धारित करते समय इन दोनों मतों के मध्य पारस्परिक संतुलन बनाए रखने को सर्वदा न्यायोचित मानता है ताकि मामले में संदेह की कोई भी स्थिति शेष न रहे और तदनुसार किसी भी पक्षकार के साथ अन्याय होने की सभी सम्भावनाओं का निवारण

किया जा सके।

वस्तुतः इसी आशय की पुष्टि निम्नलिखित न्यायिक विनिश्चयों के संचयी पठन से भी हो जाती है :

1. रतन गौड़ बनाम् बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1959 सु.को. 18

न्यायिकेतर संस्वीकृति एक अत्यंत ही निर्बल प्रकृति का साक्ष्य होता है इसीलिए इसको बड़ी ही सावधानी व सतर्कता से ग्रहण किया जाना चाहिए तथा इसे ग्राह्य किए जाने से पूर्व प्रायः इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिए कि (1) क्या वह स्वेच्छा से की गई थी (2) क्या वह सत्य थी (3) जिस व्यक्ति के समक्ष वह की गई है उस व्यक्ति की परिस्थितियां और उत्तरदायित्व (4) ऐसे व्यक्ति की सत्यवादिता इत्यादि।

2. राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1967 सु.को. 152

यदि न्यायिकेतर संस्वीकृति का परिसाक्ष्य एक ऐसे व्यक्ति के मुख से आता है जिसके पास झूठ बोलने को कोई हेतुक नहीं है और जिन परिस्थितियों में संस्वीकृति की गई है, वे भी इसका समर्थन करती है तो ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं है कि इस पर विश्वास न किया जाए।

3. प्यारा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1977)4 एस.सी.सी. 459

विधि यह अपेक्षा नहीं करती कि प्रत्येक स्थिति में, न्यायालय से बाहर की गई संस्वीकृति का सम्पोषण होना चाहिए।

4. नारायण सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1985 सु.को.1678

किसी भी न्यायालय को प्रारंभ से ही यह मानकर नहीं चलना चाहिए कि न्यायिकेतर संस्वीकृति अत्यंत कमजोर साक्ष्य होता है बल्कि वास्तविकता यह है कि इस संस्वीकृति का साक्ष्यिक मूल्य सदैव परिस्थितियों की प्रकृति, उक्त संस्वीकृति करने का समय तथा साक्षियों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा।

5. कैलाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1994) कि.ला.ज. 142

जब न्यायिकेतर संस्वीकृति के परिसाक्ष्य से इस बात की झलक मिलती है कि वह स्वेच्छापूर्वक नहीं की गई थी तब ऐसी संस्वीकृति पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

6. चयाकॉत नायक बनाम बिहार राज्य, (1997) दा.नि.प. 63

न्यायिकेतर संस्वीकृति अभियुक्त की दोषसिद्धि का आदेश अभिलिखित करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकती, यदि चारों ओर की अन्य परिस्थितियां और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री अभियुक्त की आलिप्तता का सुझाव नहीं देती है।

7. कविता बनाम तमिलनाडु राज्य, 1998 एस.सी.सी. 108

इसमें कोई संदेह नहीं कि दोषसिद्धि, न्यायिकेतर संस्वीकृति पर आधारित हो सकती है। लेकिन यह भी सुस्थिर है कि यह स्वयं में एक कमजोर प्रकृति का साक्ष्य है और इसका मूल्य उस साक्षी की सत्यता/विश्वसनीयता पर निर्भर करता है जिससे कि वह संस्वीकृति की गई है।

8. कल्पना मजूमदार और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य, ए.आई.आर. 2002 सु.को. 2826

यदि न्यायिकेतर संस्वीकृति की संपुष्टि ठोस परिस्थितिजन्य साक्ष्य से हो जाती है तो इसके आधार पर अभियुक्त को सिद्धदोष ठहराया जाना न्यायोचित होगा।

9. सिवा कुमार बनाम राज्य, (2006) एस.सी.सी. (कि.) 470

न्यायिकेतर संस्वीकृति का साक्ष्य दुर्बल प्रकृति का हो भी सकता है और नहीं भी। वस्तुतः इस तथ्य का ऑकलन सदैव प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

निष्कर्षतः इस विशद विवेचना के आधार पर यह कहना पूर्णतया न्यायसंगत होगा कि विधि का ऐसा कोई भी निश्चित नियम नहीं है जो कि यह निर्देशित करता हो कि न्यायिकेतर संस्वीकृति पर विश्वास न किया जाए या सम्पुष्टि के अभाव में इसको सर्वदा अपवर्जित कर देना चाहिए या एकमात्र इसी आधार पर अभियुक्त की दोषसिद्धि को अवलम्बित नहीं रखा जा सकता। बल्कि वास्तविकता यह है कि विधि न्यायिकेतर संस्वीकृति के परिसाक्ष्य पर भी ठीक उसी प्रकार से विचार किए जाने की अपेक्षा करती है जैसे कि न्यायालयों द्वारा अन्य साक्ष्यों पर विचार किया जाता है और यदि यह संस्वीकृति सम्यक विचारोपरांत सत्य, स्वैच्छिक, स्पष्ट, स्वाभाविक एवं विश्वसनीय पाई जाती है तो इसे स्वीकार किए जाने में कोई दोष नहीं हो सकता यहां तक कि कुछ विशिष्ट समाधानप्रद परिस्थितियों में सम्पोषण का अभाव होने पर भी न्यायिकेतर संस्वीकृति अभियुक्त की दोषसिद्धि अभिलिखित करने का एकमात्र आधार बनाई जा सकती है।

परंतु फिर भी, चूँकि यह बात सर्वविदित है कि हमारे आपराधिक न्यायशास्त्र में इस भावना को प्रमुख रूप से अंगीकृत किया गया है कि चाहे भले ही दस अपराधी निर्मुक्त हो जाए लेकिन एक भी निर्दोष व्यक्ति दण्डित नहीं होना चाहिए, अतः इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुंए यह न्याय-हित में होगा और साथ ही साथ बुद्धिमत्तापूर्ण भी कि ऐसी संस्वीकृति पर विश्वास करने से पूर्व, सर्वप्रथम इसकी सभी दृष्टिकोणों से अत्यंत सतर्कतापूर्वक संवीक्षा कर ली जाए ओर तदुपरांत ही इसे कोई साक्ष्यिक मूल्य प्रदत्त किया जाए अन्यथा न्याय की हानि होने की सम्भावना बनी रहेगी। विशिष्ट रूप से ऐसे मामलों में जिनमें कि अभियोजन का सम्पूर्ण पक्षकथन केवल न्यायिकेतर संस्वीकृति पर ही निर्भर करता है। ❐

"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आम जनता के प्रति पुलिस द्वारा अपने कर्तव्यों के पालन में दिन-प्रतिदिन सामने आने वाली समस्याओं के प्रति पूर्णतया भिन्न दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।"

—सरदार वल्लभभाई पटेल

विलम्बित न्याय का पुलिस व समाज पर दुष्प्रभाव

ओम प्रकाश

(पुलिस उपाधीक्षक)

डॉ. भीमराव अंबेडकर पुलिस अकादमी उत्तर प्रदेश, मुरादाबाद

विलम्बित वादों के संबंध में दृष्टि डाले तो स्थिति बहुत ही भयावह है। हमारे भारतीय संविधान में व्यवस्था की गई है कि भारत के समस्त नागरिकों को न्याय प्राप्त करने का अधिकार है, जिसे प्राप्त करने के लिए वह न्यायालय की शरण में जा सकता है। वस्तुस्थिति यह है कि आज देश भर के न्यायालयों में लाखों वाद लम्बित चल रहे हैं। जनता को समय से न्याय नहीं प्राप्त हो रहा है। जनता को प्रतीक्षा है कि उन्हें या उनके संबंधी को शीघ्र न्याय प्राप्त हो। भारत जैसे विशाल देश में न्यायिक प्रणाली इतनी मंथर गति से चल रही है कि आम नागरिक को न्यायालय में जाने से हिचक होती है। वादी-प्रतिवादी की मृत्यु हो जाती है लेकिन मुकदमे लंबित ही रहते हैं। लंबित वाद प्रकरण के कारण तमाम बहुमूल्य व निर्दोष जिंदगियाँ जेल की सीखचों में अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत कर देती हैं। बाद में निर्णीत होता है कि अमुक व्यक्ति निर्दोष था। इस तरह के समाचार प्रायः समाचार पत्रों व टी.वी. पर देखे जा सकते हैं हमारे महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या के अवसर पर संबोधित किया है कि न्यायिक प्रक्रिया को त्वरित किया जाए, जिससे पीड़ित नागरिकों को यथाशीघ्र न्याय मिल सके।

"संविधान में मूलाधिकारों की अमूर्त घोषणाएं निरर्थक हैं जब तक कि उन्हें प्रभावित करने के साधन न हों। अधिकारों के अनुपालन को प्रवृत्त करने की न्यायालयों की शक्ति न्यायपालिका की निष्पक्षता और स्वतंत्रता पर ही नहीं, इस बात पर निर्भर करती हैं कि कार्यपालिका अन्य प्राधिकारियों से अनुपालन कराने के लिए उनके पास कितने प्रभावी उपकरण हैं।" भारतीय लोकतंत्र को संचालित करने वाले तीन महत्वपूर्ण अंग हैं–

1. विधायिका
2. कार्यपालिका
3. न्यायपालिका

उपरोक्त विधायिका और कार्यपालिका एक दूसरे पर निर्भर करते हैं कि विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों का कार्यपालिका किस प्रकार क्रियान्वित करती है। देश की जनता के हितों की रक्षा एवं उनके मूलाधिकारों की रक्षा सम्यक रूप से हो रही है कि नहीं इसे न्यायपालिका सुनिश्चित करती है। वर्तमान काल में न्यायपालिका का महत्व इस संदर्भ में और बढ़ जाता है कि वह जनता के मूलाधिकारों की रक्षा करते हुए त्वरित न्याय प्रदान करे।

विलम्बित न्याय के कतिपय महत्वपूर्ण तथ्य —

इस समय देश की निचली अदालतों से लेकर उच्चतम न्यायालय तक करोड़ों मामले लम्बित हैं। विचारण व निस्तारण में कई वर्ष बीत गए हैं किन्तु अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका है। अनिर्णीत मामलों के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण आंकड़े निम्नवत् हैं—

1. उच्चतम न्यायालय के अनुसार भारत के उच्च न्यायालयों में 1.70 करोड़ अपराधिक मामले लंबित चल रहे हैं।
2. भारत के जिला न्यायालयों में विचारण के लिए 6,58,982 मामले लम्बित हैं।
3. केवल उच्चतम न्यायालय में ही 37,323 मामले लम्बित हैं

4. देश में बलात्कार के 55 हजार से ज्यादा मामले विभिन्न अदालतों में लम्बित हैं। इस तरह के एक मामले को निपटाने में औसतन दस वर्ष का समय लग जाता है। सिर्फ राजस्थान में जनवरी–फरवरी 2006 में बलात्कार से संबंधित 55 मामले दर्ज किए गए।
5. पूरे देश में 1,135 कारागार हैं जिसमें लगभग 3 लाख 22 हजार कैदी हैं। इनमें 2 लाख 32 हजार विचाराधीन कैदी हैं।

उपरोक्त आंकड़ों को देखने से परिलक्षित होता है कि देश के न्यायालयों में विलम्बित वादों की लम्बी सूची है तथा इसमें निरंतर वृद्धि होती जा रही है। आज स्थिति यह है कि जेलों की दशा बहुत ही दयनीय है। मानक संख्या से अधिक जेलों में कैदी रह रहे हैं इस समय औसतन दोगुने कैदी बैरकों में रहते हैं जिनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में जेल प्रशासन को कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

विलम्बित न्याय का पुलिस पर दुष्प्रभाव—

न्यायिक निर्णयों में विलम्ब होने से पुलिस पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे पुलिस की कार्यशैली व मनोबल दोनों प्रभावित होते हैं। विलम्बित न्याय के कारण पुलिस पर पड़ने वाले प्रभाव का निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत अवलोकन किया जा सकता है–

1. तथ्य का विस्मृत होना : कोई भी वाद जो न्यायालय में वर्षों से चल रहा है और अनिर्णीत है, उस संबंध में जब न्यायालय साक्ष्य देने के लिए संबंधित अधिकारी व कर्मचारी को बुलाता है तो लम्बे अन्तराल के कारण बहुत से महत्वपूर्ण तथ्य वह भूल चुका होता है, जिसके कारण से अधिकांश मामलों में पीड़ित पक्ष को न्याय मिलने में संदेह रहता है। इस तरह से तथ्य के विस्मृत होने से आरोपित व्यक्ति को इसका लाभ मिल जाता है।

2. वास्तविक स्थान से दूर नियुक्ति : पुलिस विभाग में स्थानान्तरण होना एक सहज प्रक्रिया है। प्रायः देखा गया है कि जिस स्थान पर अभियोग चल रहा है उस स्थान से काफी दूरी पर तत्कालीन अधिकारी/कर्मचारी की नियुक्ति होती है। उसे न्यायालय में समय से पहुँचने में कठिनाई होती है।

3. बार-बार साक्ष्य देने के लिए जाना : पुलिस कर्मचारी को न्यायालय में साक्ष्य देने के लिए जाना पड़ता है। कई बार ऐसा होता है कि विभागीय व्यस्तता के कारण अवरोध उत्पन्न होता है। प्रतिवादी के वकील वाद को अपने पक्ष में करने के लिए मुकदमे की सुनवाई की तारीखें बार-बार किसी न किसी बहाने से आगे बढ़ाने में सफल होते हैं।

4. मानसिक तनाव : पुलिस कर्मचारी को अपने सेवा काल में विभिन्न तरह के कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है। दीर्घकाल तक न्यायालयिक कार्यवाही के चलते रहने के कारण और बार-बार न्यायालय के कटघरे में जाकर खड़े होना और मजिस्ट्रेट के द्वारा तरह-तरह के सवाल पूछने से पुलिस कर्मचारी तनाव से ग्रसित होता जाता है, क्योंकि साक्ष्य देने के अतिरिक्त उसके पास विभाग के बहुत से काम करने पड़ते हैं जिसके कारण उसे विश्राम करने का पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है। उसकी चिन्तन शक्ति प्रभावित होती है। मनुष्य में स्वस्थ चिन्तन का अभाव होने से तर्क करने और किसी तथ्य को अच्छी तरह से समझने की क्षमता कम हो जाती है।

5. साहसिक क्षमता में कमी : पुलिस प्रारंभ में बड़े अपराधियों को गिरफ्तार करके जेल तो भेज देती है, परन्तु बाद में वे अपराधी अपने प्रभाव से जेल से बाहर आ जाते हैं और फिर से पूर्व की तरह सक्रिय हो जाते हैं। इससे पुलिस के मनोबल पर विपरीत असर पड़ता है और उसकी प्रतिभा एवं शक्ति प्रभावित होती हैं। न्यायालयों के निर्णय में विलम्ब का लाभ व राजनैतिक हस्तक्षेप के

सहारे अपराधी पुलिस पर भारी पड़ते हैं। इनके द्वारा जब कोई अन्य अपराध-कारित किया जाता है तो पुलिस कर्मचारी उन्हें रोकने का साहस नहीं कर पाता है, क्योंकि वह जानता है कि उसके द्वारा कोई कदम उठाया जाता है तो वह निष्प्रभावी होगा। विलम्बित न्याय के कारण इस तरह की पहुंच वाले अपराधियों का मनोबल बढ़ता है और पुलिस के साहस में कमी आती है। समाज के श्वेतपोश अधिकारी भी इसका लाभ उठाकर बच निकलते हैं।

6. सरकारी धन का अपव्यय : जब कोई भी वाद लम्बे समय तक न्यायालय में विचाराधीन रहता है और साक्ष्य के लिए पुलिस कर्मचारी को कई बार बुलाया जाता है तो इससे सरकार का काफी धन व्यय होता है। यदि वाद का निपटारा शीघ्रता से हो तो सरकार के धन की बचत होगी। लम्बे समय तक वाद चलते रहने से सरकार पर आर्थिक बोझ बढ़ता है।

विलम्बित न्याय का समाज पर दुष्प्रभाव–

हमारे देश की अधिकांश आबादी गरीब है और आर्थिक समस्याओं से ग्रसित है। जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षा तथा सामाजिक न्याय की सुरक्षा के लिए अनेक कानूनों की संरचना की गई है, किन्तु विविध कानूनों के द्वारा यदि जन सामान्य को समय से न्याय न उपलब्ध हो सके तो वे कानून निरर्थक हैं। विलम्बित न्याय का समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

1. जनता का न्यायालय व पुलिस तंत्र से विश्वास कम होना : जनता की शासन से अपेक्षा होती है कि उसके जीवन की रक्षा हो तथा उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो। सुरक्षा प्रदान करने में कानून की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अपराध पर नियंत्रण के लिए कानून की आवश्यकता होती है, क्योंकि कानून हृदय परिवर्तन नहीं करता, हृदय को नियंत्रित अवश्य करता है। विलम्बित न्याय के कारण जनता में निराशा की भावना पनपती है। मामले के विलम्बित रहने से पीड़ित व्यक्ति का धैर्य टूट जाता है। उसका न्यायालय व पुलिस तंत्र से विश्वास खत्म होने लगता है। मामले को लम्बा खींचने में बचाव पक्ष की भी सक्रिय भूमिका होती है। बड़े मामलों में अभियुक्त पेशेवर अपराधी गवाह को खरीद लेते हैं और उन्हें डरा-धमका कर अपने कथन से मुकरने के लिए मजबूर कर देते हैं।

2. पीड़ित जनता द्वारा शिकायत/अपील न करना: समाज का पीड़ित व्यक्ति जब न्याय की प्रत्याशा में कई सालों तक प्रतीक्षा करता है तो वह अनुमान लगाता है कि न्याय का इन्तजार करना व्यर्थ है। अधिक समय तक न्याय का इन्तजार करते-करते वह थक जाता है। पुनः वह न्यायालय जाना बन्द कर देता है और निर्णय एकांगी हो जाता है।

3. न्याय के लिए धन का व्यय होना : जनता का मुकदमे के दौरान बहुत सा धन व्यय हो जाता है, फिर भी उसे समय से न्याय से नहीं मिल पाता है। मुकदमे के दौरान वकीलों द्वारा बहुत सा धन गरीब जनता से ले लिया जाता है। वे बार-बार मुकदमे की तारीखें बढ़ाते रहते हैं। परेशान जनता भविष्य में न्यायालय जाने में संकोच करती है।

4. वादी/प्रतिवादियों की मृत्यु : वादों का लम्बे समय तक चलते रहने से अधिकांश वादी/प्रतिवादी या साक्षियों की मृत्यु हो जाती है। इस तरह से न्यायिक निर्णय प्रभावित होता है।

5. गवाहों का मुकर जाना : विलम्बित न्याय के कारण गवाह मुकर जाते हैं। दबंगों के द्वारा उन्हें धन का प्रलोभन देकर या दबाव डालकर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया जाता है। जिससे अपराधी निर्दोष साबित हो जाता है और मुकदमे में पीड़ित पक्ष को न्याय नहीं मिलता। समय बीत जाने पर साक्ष्य भी समाप्त हो जाते हैं। गवाह अदालत पहुँच भी जाते हैं तो शातिर अपराधी जेल के डाक्टरों से मिलकर स्वास्थ्य के आधार पर अगली तारीखें ले लेते हैं। गवाहों के मुकरने तथा साक्ष्यों के समाप्त होने

से न्यायिक प्रक्रिया बुरी तरह प्रभावित होती है। ऐसी परिस्थिति में अदालत के सामने अभियुक्त को बरी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता है। निष्कर्षतः न्याय में विलम्ब का फायदा अपराधी को मिलता है।

6. भ्रष्टाचार : आज भ्रष्टाचार समूचे तंत्र को प्रभावित कर रहा है। अपराध बढ़ने का सबसे बड़ा कारण भ्रष्टाचार है जिसके कारण से अभियुक्त छूट जाते हैं। अभियोजन को कमजोर करने में पुलिस तथा लोक अभियोजन की भी भूमिका होती है। त्वरित न्यायिक कार्यवाही में भ्रष्टाचारियों को समय नहीं मिलता है। जनता के मध्य न्यायालय व प्रशासन की स्वच्छ छवि उभरेगी। अतः न्यायिक प्रक्रिया को गति प्रदान करके भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया जा सकता है।

विलम्बित न्याय के कतिपय दृष्टान्त : विलम्बित न्याय के कारण पीड़ित व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता है? इसका कतिपय दृष्टान्तों के माध्यम से अवलोकन किया जा सकता है–

- असम के मचल लालुंग का एक मामला प्रकाश में आया जो पिछले 54 वर्षों से जेल में था। उसके विरुद्ध कोई मामला नहीं था, न ही उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने का कोई रिकार्ड। वह 1951 से जेल की सलाखों के पीछे था। राष्ट्रीय मानवाधिकार के समक्ष एक रुटीन जांच के दौरान यह मामला सामने आया। उच्चतम न्यायालय ने उसे तीन लाख रुपए मुआवजा एवं एक हजार रुपए मासिक पेंशन देने का निर्देश राज्य सरकार को दिया। अदालत मुआवजा तो दिला सकती है, किन्तु उसका यौवन कोई नहीं लौटा सकता।
- इसी तरह 1983 में रुदल शाह के मामले ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया था, जो 30 वर्षों से जेल में बन्द था। उच्चतम न्यायालय ने उसके मौलिक अधिकारों में हनन के लिए पहली बार मुआवजा दिलाया था।
- उसी समय बोका ठाकुर का मामला भी प्रकाश में आया। बोका ठाकुर 36 वर्षों से कैद में था।
- मोती लाल सर्राफ जो कि स्टेट बैंक आफ इंडिया के मैनेजर थे, उन पर जम्मू और कश्मीर पुलिस ने जम्मू एवं कश्मीर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अन्तर्गत वर्ष 1980 में रु. 780.00 रिश्वत लेने का आरोप लगाया था, किन्तु उच्च न्यायालय ने उचित संस्तुति के अभाव में खारिज कर दिया था। पुनः पुलिस ने विभागीय जांच के उपरांत उन्हें सेवा से बर्खास्त करने के लिए आरोप पत्र दाखिल किया। सर्राफ दूसरे आरोप पत्र के विरुद्ध उच्च न्यायालय गए, लेकिन उनका प्रतिवेदन 2001 में खारिज कर दिया गया। सर्राफ पुनः उच्चतम न्यायालय गए। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि पिछले 26 सालों में अभियोजन एक भी साक्ष्य का अन्वीक्षण नहीं कर सका है, इसलिए आपराधिक प्रक्रिया समाप्त की जाती है।
- बलात्कार के 55 हजार से ज्यादा मामले देश की विभिन्न अदालतों में लंबित हैं व एक मामले को निपटाने में औसतन दस वर्ष लग जाते हैं। पिछले साल मुंबई में अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के बाहर कूड़ा बीनने वाली 15 वर्षीय एक नाबालिग लड़की के साथ पुलिस वाले ने बलात्कार किया। मामला अब भी अदालत में है।
- दिल्ली में धौलाकुंआ सामूहिक बलात्कार कांड की पीड़ित छात्रा को अब तक न्याय नहीं मिला है और न ही जल्दी मिलने की उम्मीद है क्योंकि मामले की सुनवाई के दौरान दस में से तीन गवाह अपने बयानों से मुकर गए।
- 29 जुलाई 2005 को हरियाणा के रिवाड़ी जिले के सिया गांव की एक नाबालिग लड़की के साथ उसी बस के कंडक्टर ने बलात्कार किया जिस बस से वह अपने गांव से सोहना गई थी। वह मामला

भी अदालत में लंबित है और पीड़िता को न्याय का इंतजार है।

ऐसे अनेक मामले हैं जो न्यायिक तथा पुलिस प्रशासन को बेनकाब करते हैं। इस तरह के मामलों में पीड़ित कोई पेशेवर अपराधी या समर्थ व्यक्ति नहीं, बल्कि निर्दोष और गरीब होते हैं।

त्वरित न्याय के कतिपय सराहनीय दृष्टान्त—

- उड़ीसा की एक स्थानीय अदालत ने 23 सितंबर 2006 को एक नाबालिग लड़की के साथ हुए बलात्कार के मुकदमे का केवल 20 दिन में निपटारा करते हुए अभियुक्त निरंजन प्रधान को दो हजार का जुर्माना एवं 10 वर्ष की सख्त सजा सुनाई।
- 11 मई, 2005 को राजस्थान के जोधपुर में एक जर्मन महिला के साथ ऑटोरिक्शा चालक व उसके साथी ने बलात्कार किया। थाने में रिपोर्ट दर्ज हुई व उच्च अदालत ने अखबारों में छपी खबर के आधार पर संज्ञान लेते हुए जोधपुर सत्र अदालत को एक महीने के भीतर फैसला सुनाने का आदेश दिया। 1 जून 2005 को जोधपुर के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने उच्च अदालत द्वारा तय अवधि से काफी पहले मात्र 16 दिनों के भीतर दोनों अभियुक्तों को उम्र कैद की सजा सुनाई।
- इसके बाद 20 मार्च 2006 को एक बार फिर जर्मन महिला का बलात्कार हुआ। इस बार बलात्कारी उच्च पुलिस अधिकारी का बेटा था। मुकदमा चला व 12 अप्रैल को फैसला सुना दिया गया।

इन फैसलों ने समाज में यह संदेश भेजा कि आरोपी चाहे उच्च पुलिस अधिकारी का बेटा हो या एक ऑटोरिक्शा चालक, पुलिस व न्यायपालिका की नजर में दोनों बराबर हैं। न्याय दिलाने में यह तत्परता प्रशंसनीय है, लेकिन बलात्कार की शिकार महिला स्वदेशी हो या विदेशी, उसे तुरंत न्याय मिलना चाहिए।

त्वरित न्याय के साधन/अभिकरण—

भारत में न्यायिक विधि के मुख्य स्त्रोत हैं– संविधान, संविधि (विधान मंडलों द्वारा), परंपरागत विधि और न्यायालयों के निर्णय पर आधारित कानून। देश की संसद के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, नगर निगम, नगर पालिकाएं, ग्राम पंचायतें और अन्य स्थानीय स्वायत्त संस्थाएं नियम, उपनियम तथा उपविधियां बनाते हैं। ये अधीनस्थ विधान कहलाते हैं।

उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के निर्णय विधि के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। कुछ राज्यों में पंच अदालतें हैं, जिन्हें न्याय पंचायत, पंचायत अदालतें, ग्राम कचहरी आदि कहा जाता है। पंचायत अदालते दिवानी, फौजदारी के स्थानीय छोटे-छोटे मामले निपटाती हैं।

प्रदेश के किसी भी उच्च न्यायालय के किसी भी निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। चाहे वह निर्णय दीवानी हो, फौजदारी या किसी अन्य मुकदमे से संबद्ध हो। "फास्ट ट्रैक कोर्ट" (जल्द मामले निपटाने वाली अदालतें) एवं लोक अदालतें ऐसे न्यायिक अभिकरण हैं जो न्याय प्रदान करने में सक्रियता की भूमिका निभाते हैं।

पीड़ित व्यक्तियों को त्वरित न्याय सुनिश्चित करने के लिए उपरोक्त न्यायालय एवं न्यायिक अभिकरण सक्रिय हैं। पीड़ित व्यक्तियों को यदि विलम्ब से न्याय मिलता है तो उसका मनोबल टूट जाता है एवं वह हताश होकर न्यायिक कार्यवाही से विमुख हो जाता है। अतः प्रशासन एवं न्यायालय गरीबों को त्वरित न्याय प्रदान करने के साथ-साथ उसे उचित क्षतिपूर्ति भी प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चित करें। न्यायिक प्रशासन व्यवस्था की समीक्षा करते रहना चाहिए ताकि मुकदमों के फैसले जल्दी हो सकें तथा न्याय प्राप्त करने में कम खर्च हो। अदालती कार्यवाही को सरल बनाया जाए। न्यायिक प्रणाली को सक्रिय बनाने के लिए निम्न अदालतों से लेकर उच्च अदालतों का कम्प्यूटरीकरण किया जाए,

ताकि मुकदमों के आंकड़ों का सही आकलन करके न्यायिक प्रक्रिया को गतिशील किया जा सके। इसके अतिरिक्त लम्बित वादों की संख्या को दृष्टिगत रखते हुए न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि भी होनी चाहिए जिससे वादों का निपटारा शीघ्र हो सके। न्याय व्यवस्था से संबद्ध सभी व्यक्तियों के स्तर में सुधार होना चाहिए। सामान्य महत्व के केन्द्रीय कानूनों की समीक्षा करना ताकि इनकी विसंगतियां, अस्पष्टताएं और असमानताएं दूर की जा सकें।

संदर्भ स्त्रोत

1. हिन्दुस्तान टाइम्स 13 अक्टू. 2006
2. अमर उजाला 11 अक्टू. 2006
3. ग्लोबल डिप्लोमेसी जुलाई–अगस्त 2006
4. भारत वार्षिकी 2004

❐

"इस देश में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें अच्छे व्यक्तियों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। पुलिस विभाग एक बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक विभाग है। मुझे विश्वास है कि सरकार उन्हें जो सुविधाएं दे रही है उसके महत्व को समझ कर वे इनके बदले में जनता को अपनी अच्छी सेवाएं देकर सरकार को अधिक से अधिक लाभान्वित करेंगे।"

—भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेंद्र प्रसाद

लोकतांत्रिक व्यवस्था और चुनाव

ओम प्रकाश 'दार्शनिक'

ए.डी.ए.फ्लैट नं. 2/2, अलोपी बाग, इलाहाबाद-211006

मानव-सभ्यता की प्रगति के समय से ही कोई न कोई शासन प्रणाली सदैव अस्तित्व में रही है किन्तु अब तक किसी आदर्श शासन-पद्धति का कोई सर्वमान्य व्यावहारिक स्वरूप न तो कोई आकार ग्रहण कर सका है और न ही किसी आदर्श स्वरूप को परिभाषित किया जा सका है। सामान्य तरीके से शासन तन्त्र को दो हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम, वह शासन तन्त्र जिसमें सत्ता, संवैधानिक विधि से सामान्य जनता में निहित होती है अर्थात् वह किसी समूह अथवा व्यक्ति-विशेष के हाथों में निहित नहीं होती है। इसी को लोकतांत्रिक पद्धति कहा जाता है। इसके विपरीत, अन्य प्रकार के शासन तंत्र में सत्ता एवम् शक्ति किसी व्यक्ति-विशेष अथवा किसी वर्ग अथवा समूह में निहित होती है। इसे सर्वाधिकारवादी शासन तन्त्र कहा जाता है।

आधुनिक युग में सम्पूर्ण विश्व में लगभग लोकतांत्रिक शासन पद्धति को ही सर्वोच्च, श्रेष्ठतम माना जाता है। लोकतंत्र की दृढ़ता ही किसी देश के विकास का मानक होती है, लोकतंत्र को यह गौरव, उसकी विशिष्ट निर्वाचन प्रणाली प्रदान करती है। निर्वाचन प्रणाली के कारण ही लोकतंत्र को आज सर्वाधिक लोकप्रिय और करीब-करीब आदर्श शासनतंत्र माना जाता है। शासन-सत्ता में जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए चुनाव ही एकमात्र निराकरण होता है। लोकतांत्रिक स्थिरता इस बात पर निर्भर करती है कि उस व्यवस्था में चुनाव जनता की सरकार के उपकरण हैं अथवा नहीं। यदि चुनाव पूर्ण निष्पक्षता से हों तथा मतदाता निर्भयता व विवेक के साथ योग्य प्रत्याशियों को चुनें तो निश्चय ही लोकतंत्र की जड़ें काफी गहरी हो जाती हैं इसलिए वर्तमान समय में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ और अधिसंख्य लोगों द्वारा स्वीकार किया गया है।

यह सौभाग्य है कि हमारे देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था है तथा हम विश्व के सबसे श्रेष्ठ लोकतंत्र के रूप में जाने जाते और पहचाने जाते हैं। निःसन्देह हमारे देश में लोकतंत्र की जड़ें काफी गहराई तक व्याप्त हैं किन्तु जैसा कि आमतौर से होता है, हमारे लोकतंत्र में भी अनेक दोष उत्पन्न हो गए हैं, जिनके कारण लोकतंत्र से हमारा विश्वास डगमगाने लगा है। ऐसा तभी होता है, जब लोकतंत्र हमारी अपेक्षाओं पर कुठाराघात करता है अर्थात् खरा नहीं उतर पाता। वास्तव में यह दोष लोकतंत्र का नहीं अपितु व्यवस्था और व्यवस्था से जुड़े लोगों का है।

चुनाव या निर्वाचन लोकतंत्र की नींव कहा जाता है, जिसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधि का चयन करती है और सौंपती है उन्हें "सत्ता"। यही तो चुनाव का महत्त्व है और इसीलिए चुनावों को "महोत्सव" के नाम से पुकारा जाता है। दुर्भाग्यवश आज हमारी चुनाव प्रक्रिया में बहुत से दोष समावेश कर गए हैं, फलस्वरूप लोकतंत्र का अस्तित्त्व खतरे में आ गया है। वस्तुतः चुनाव प्रक्रिया में बगैर सुधार किए लोकतंत्र की रक्षा करना सम्भव नहीं हैं। कारण यह है कि निष्पक्ष तथा स्वच्छ चुनावों के बिना न तो लोकतंत्र का कोई अर्थ है और न ही इसकी कोई उपयोगिता। चुनाव प्रक्रिया तथा उसमें अपेक्षित सुधारों की चर्चा करने से पूर्व लोकतंत्र को समझना और उससे परिचित होना जरूरी है।

लोकतंत्र, अंग्रेजी शब्द "डेमोक्रेसी" का हिन्दी पर्याय है। डेमोक्रेसी शब्द मूल यूनानी भाषा से लिया गया (डेमास-जनता, क्रेशिया-शासन) जिसका शाब्दिक अर्थ है–"जनता का शासन"। अमरीकी राष्ट्रपति इब्राहिम

लिंकन ने लोकतंत्र को परिभाषित करते हुए कहा,– "जनता की, जनता द्वारा, जनता के लिए सरकार।" प्रारम्भ में "लोकतंत्र" शब्द का उपयोग प्राचीन यूनान में "अनेक लोगों के शासन" के रूप में किया गया था, न कि आज जैसे सकारात्मक रूप में। इस तरह से तब सत्ता की शक्ति किसी एक व्यक्ति के हाथों में न रह कर, अनके व्यक्तियों में समाहित होती थी। अरस्तु ने तो छः तरह की शासन पद्धतियों का वर्णन किया था—(1) राजतंत्र (2) निरंकुश तंत्र (3) कुलीन तंत्र (4) वर्गतंत्र (5) लोकतंत्र (6) भीड़तंत्र। यहाँ यह कहना आवश्यक समझता हूं कि "डेमोक्रेसी" शब्द का प्रयोग, अरस्तु ने भीड़तंत्र के लिए किया था, न कि लोकतंत्र के लिए। जबकि वर्तमान समय में डेमोक्रेसी को लोकतंत्र का पर्याय माना गया है। अरस्तु के शब्दों में डेमोक्रसी का अर्थ, निर्धन, अज्ञानी और अशिक्षित लोगों के शासन को बताया था, जिसमें लोगों की संख्या अत्यधिक अर्थात "भीड़" की तरह होती है।

शुरू-शुरू में डेमोक्रेसी (भीड़तंत्र) को आदर्श शासन पद्धति नहीं माना गया तथा इसे सकारात्मक रूप में भी नहीं माना जाता था किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के लेवलर्स आंदोलन (इंग्लैण्ड) के पश्चात् लोकतंत्र का अर्थ, वांछित तथा सकारात्मक रूप में लिया जाने लगा। यद्यपि लोकतंत्र भी अन्य शासन व्यवस्था के अनुसार ही है तथापि वर्तमान समय में इसे शासन व्यवस्था से कुछ अधिक ही मान्यता प्रदान की गई है और इससे जनता की अपेक्षाएँ कुछ अधिक हैं। वास्तव में सत्यता तो यह है कि आज यह एक जीवन पद्धति, एक सामाजिक व्यवस्था, एक सांस्कृतिक प्रतिमान, राजनीतिक व्यवस्था का एक स्वरूप तथा राज्य का एक प्रकार है। दुर्भाग्यवश लोकतंत्र का यह बहुआयामी आदर्श रूप, व्यवहार में कहीं भी दिखलाई नहीं देता, इसमें अनेक प्रकार की त्रुटियों ने प्रवेश कर लिया है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में त्रुटियाँ अनेक स्तरों पर हैं किन्तु सबसे बड़ी एवं महत्त्वपूर्ण त्रुटि है–निर्वाचन प्रणाली में–अर्थात् चुनाव होने के तरीकों में। यद्यपि चुनाव की नींव पर ही लोकतंत्र का भवन निर्मित होता है, अतः आज के युग में चुनाव प्रक्रिया में सुधार की नितान्त आवश्यकता है। चुनाव का सीधा सा अर्थ है–अपने मताधिकार का प्रयोग करके अपने योग्य, ईमानदार, कर्मठ, जन-सेवक प्रतिनिधि का चुनाव और उन्हें सत्ता सौंपना। आज की सभी लोकतांत्रिक सरकारें, जनता द्वारा, चुनाव द्वारा चुनी जाती हैं। मत देने और जनता को अपने लिए कानून बनाने वाले प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार ही मताधिकार कहलाता है। यह मताधिकार चुनावों द्वारा ही प्राप्त होता है। इस तरह से मताधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था का मूलाधिकार है।

"राजनैतिक अर्थ में लोकतंत्र केवल सरकार को नियुक्त करने, नियंत्रित करने और पदच्युत करने की एक प्रणाली है" -हार्नशा-

वास्तव में मताधिकार संप्रभुता की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति है।

अब प्रश्न आता है मताधिकार अथवा चुनाव के महत्त्व का। लोकतांत्रिक सिद्धान्त की अभिव्यक्ति तथा क्रियान्वयन का व्यावहारिक स्वरूप मताधिकार है जिसे लोकप्रिय संप्रभुता कहा जाता है। यह सभी को प्रभावित करता है, उसका निर्णय सभी के द्वारा ही किया जाना उचित है। मताधिकार इसी उद्देश्य को पूर्ण करता है। लोकतंत्र की प्रतिनिधि मूलक संस्थाओं-जैसे संसद, राज्य-विधान मण्डलों, नगर-पालिकाओं तथा गाँव-पंचायतों आदि के गठन में जाति, धर्म, लिंग, निवास, शैक्षिक-स्तर तथा आर्थिक स्तर के आधार पर भेद-भाव किए बगैर जनता का प्रतिनिधित्त्व, चुनाव और मताधिकार के द्वारा ही संभव होता है। चुनाव, राजनैतिक निर्णय लेने तथा लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था स्थापित करने में, जनता की भागीदारी सुनिश्चित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। चुनाव ही है, जो विभिन्न सामाजिक

समस्याओं, जनसमस्याओं, माँगों एवम् हितों के प्रति परोक्ष रूप से जागरूकता उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त चुनाव ही सुधार तथा परिवर्तन करने के लिए जन-अभिलाषा और आकांक्षा की अभिव्यक्ति को मार्ग-दर्शन प्रदान करता है।

यद्यपि लोकतंत्र की सफलता हेतु अनेक तत्त्व उत्तरदायी होते हैं, किन्तु किसी एक ही कारक को लोकतंत्र की सफलता के लिए जिम्मेदार नहीं माना जा सकता, फिर भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव के महत्त्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। लोकतंत्र की सफलता के लिए सामाजिक चरित्र का ऊँचा होना अति आवश्यक है। यदि राष्ट्रीय चरित्र नैतिक, कर्तव्यपरायण, ईमानदार और जन-शुभ चिंतक है तो निःसंदेह देश में एक ऐसा वातावरण निर्मित हो जाएगा, जिसमें लोकतंत्र सर्वदा फलता-फूलता रहेगा। चारित्रिक-पतन, बेईमानी, कर्तव्यों के प्रति लापरवाही, लोकतंत्र का विनाश है और ऐसी परिस्थितियों में लोकतांत्रिक न्याय नहीं किए जा सकते। स्वार्थ तथा पदलोलुपता एवम् सामूहिक कल्याण के प्रति उदासीनता, किसी भी सफल लोकतंत्र को बरबाद करने की शक्ति रखने वाले कारक हैं।

लोकतंत्र तभी फलीभूत और प्रगति कर सकता है, जब वैधानिक परम्पराओं के प्रति निष्ठा हो। जहाँ जन साधारण में राजनैतिक-जागृति पाई जाती है, सार्वजनिक प्रश्नों के प्रति अभिरुचि पाई जाती है तथा सत्यता व ईमानदारी के अपने राष्ट्र के प्रति त्याग करने की तीव्र अभिलाषा होती है, वहीं पर लोकतंत्र सफल पाया जाता है। यदि ऐसे जागरूक तथा सच्चे लोग चुनाव में अपने मताधिकार का उपयोग करें तो कोई कारण नहीं कि लोकतंत्र सफल न हो सके।

लोकतंत्र की सफलता का सूत्र यह है कि जनता में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों तथा मूल्यों में विश्वास पैदा हो। जनता बौद्धिक रूप से जागृत हो, जनता इतनी समझदार तथा शिक्षित हो कि वह सार्वजनिक समस्याओं पर खुले हृदय से अपने विचार व्यक्त कर सके तथा समय आने पर इन समस्याओं के निराकरण की खोज कर सके। मत देने वालों में इतनी योग्यता अवश्य हो कि देश के लोकतंत्र की आवश्यकताओं को समझकर उसके अनुरूप प्रतिनिधि शासन की स्थापना कर सके।

लोकतंत्र की सफलता के लिए सामाजिक न्याय की भी आवश्यकता है। सामाजिक न्याय से मेरा मतलब है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए हर व्यक्ति को समान अवसर का मिलना। न्याय और कानून की दृष्टि में भी सबको समान रूप से देखा जाए। आर्थिक असमानताओं के होते हुए सामाजिक न्याय की बात सोचना व्यर्थ है और जब सामाजिक न्याय नहीं मिलेगा तो लोकतंत्र की बात सोचना बेकार है। लोकतांत्रिक व्यवस्था का तकाजा है कि जनता को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता उपलब्ध हो और वह स्वेच्छापूर्वक अपने विचार प्रकट कर सके। बगैर स्वतंत्रता के नागरिक शासकीय कार्यों में भाग नहीं ले पाएंगे ऐसे हालात में लोकतंत्र अपना अर्थ ही खो बैठेगा।

लोकतंत्र की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है—देश में शांति और सुरक्षा का वातावरण, शक्ति और सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा सत्ता एक हाथ से निकल कर अनेक हाथों में शासन-व्यवस्था जैसे लोगों का विकास करेगी, वैसे लोग ही समाज तथा राजनीति को नेतृत्त्व प्रदान करेंगे एवं नेतृत्त्व से ही लोकतंत्र के भविष्य का निर्माण होगा। इस तरह स्पष्ट है कि चुनाव का लोकतंत्र में अत्यधिक महत्त्व है। चुनावों के द्वारा हम जैसे जनप्रतिनिधियों को चुनेंगे, वैसा ही शासन हमको प्राप्त होगा और हमारा लोकतंत्र उसी के अनुरूप ही स्वरूप धारण करेगा।

आज हमारे चारों ओर का राजनैतिक वातावरण अच्छा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि देश की जनता की आस्था डगमगाने लगी है, उसके विश्वास का निरन्तर क्षय हो रहा है और इसका प्रमुख कारण है— हमारी

चुनाव प्रणाली के दोष, कुछ अभाव। एक समय था, जब राजनीति समाज-सेवा का एक माध्यम था, किन्तु आज की राजनीति का स्वरूप विकृत हो चुका है, आज की राजनीति स्वयं-सेवा का एक माध्यम बन चुकी है। अब राजनीति अपने काले-कारनामों को छिपाने का जरिया बन गई है। ऐसे एक नहीं अनेक दृष्टान्त हैं कि जब अपराध-जगत में अपने झण्डे फहराने वाले अपराधियों पर पुलिस का दबाव बढ़ा, जब न्यायतंत्र का शिकंजा कसा तो वे राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश कर गए। तभी तो आज हमारी संसद तथा विधान सभाओं में हिस्ट्रीशीटर अपराधियों की संख्या खूब बढ़ चुकी है। कई-कई आपराधिक मुकदमों का सामना करने वाले लोग राज्यों में मुख्यमंत्री-पद को सुशोभित कर चुके हैं, तो कुछ केन्द्रीय मंत्री परिषद तक में स्थान ग्रहण कर चुके हैं–

भिन्न प्यालियों में भरने से,
मदिरा भिन्न नहीं हो जाती।
उनके राजनीति में आ जाने से,
मनोवृत्ति भिन्न नहीं हो पाती।।

आज हम सभी राजनीति के अपराधीकरण और शासन-व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार से जो दुःखी और पीड़ित है तो उसका मुख्य कारण है–चुनाव प्रक्रिया के दोष। यह कहना अनुचित न होगा कि हमारी चुनाव-प्रणाली में थोड़े ऐसे छेद जरूर हैं, जिनका लाभ उठाकर अपराधी सत्ता के गलियारों में पहुँच जाते हैं और हम सभी पर हुकूमत करते हैं। मेरी बिल्ली मुझी से म्याऊँ। अपनी चुनाव प्रणाली के दोषों को तलाशना और उनको दूर करना आज समय की पुकार है, समय की माँग है। चुनाव प्रणाली को सुधार कर ही हम लोकतंत्र की नींव सुदृढ़ बना सकते हैं, लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा कर सकते हैं और लोकतंत्र से उठते हुए व समाप्त होते हुए आस्था और विश्वास को वापस कर जनता में पुनः स्थापित कर सकते हैं।

❐

"हमारी फौज और पुलिस का जरूरी फर्ज है कि वे हमेशा सचेत जागरूक और सतर्क होकर अपना काम पूरा करें। वे अपनी डयूटी इतनी अच्छी तरह करें कि लोग उनसे सीख सकें और उनके नक्शेकदम पर चल सकें।"

—भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू

संस्कारागार

श्यामसुंदर बिस्सा

उप महानिदेशक कारागार राजस्थान, जयपुर

जीवन सकारात्मकता का दूसरा नाम है जन्म क्रिया सकारात्मक क्रिया है और मृत्यु नकारात्मकता को इंगित करती है। जीव मात्र जब तक सांस लेता है वह क्रिया रूप में ही रहता है। उसे जब निष्क्रिय के रूप में नहीं देखा जा सकता तो यह कहना अतिश्योक्ति नहीं है कि वह जन्मतः, स्वभावतः, मूलतः सकारात्मक है। जीवन के दर्शन को समझने में कहीं न कहीं त्रुटि हो जाने से उसके विचारों में नकारात्मकता का उद्‌भव होता है।

हम सूर्य (जीवन) की ओर पीठकर खड़े होकर यदि अग्नि स्त्रोत सूर्य के अस्तित्व को इसलिए नकारे कि वह सामने रखे चूल्हे की अग्नि नहीं जलाता या एक बूढ़े बैल ही तरह जुए को पसंद करते हुए घोषणा करते रहें कि जंगल के सभी बारहसिंघें और हिरण आवारा हैं तो निश्चय ही ऐसा नकारात्मक भाव हमने अपने स्वार्थ का लोभ एवं सुविधा में गढ़ा है।

जीवन को समझने की त्रुटि के अन्यान्य कारणों के साथ-साथ एक कारण लोभ है। निहितार्थ से अधिक प्राप्त करने का, अनधिकृत प्राप्त करने का, अंह तुष्टि का लोभ व्यक्ति को श्रेष्ठ जीवन मूल्यों से विरत कर दुष्कर्म की ओर धकेलता है और ऐसी स्थिति में व्यक्ति उस स्थान पर पहुँच जाता है जिसका प्रादुर्भाव ही नकारात्मक है। जिसे कारा कहते हैं ये पत्थरों की दीवारें ये बैरकों की तामीरें, अजगरों के पैकर हैं, जो नए आसीरों को रात-दिन निगलते हैं।

कुछ गलत किया अतः बंधन में जाना होगा। कारागार मानव सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ नाम है। दर्शन रूप में जीवन की कारा है। शरीर भी कारा है किन्तु इन सब से खतरनाक कारागार है, विचारों कि कारा। विचारों कि कारा के कारण बंधन में आए अथवा बंधन में आने के पश्चात वैचारिक कारा में कैद हुए लोगों में नकारात्मक भाव को सकारात्मकता में परिवर्तित करने का प्रयास समाज सेवा का अंग है। क्योंकि अंततः मुक्त होकर इन लोगों को उसी समाज में आकर रहना है जहाँ आम व्यक्ति रहते हैं। यह प्रयास तभी सफल हो सकता है जब उन्हें वह सब कुछ दिया जाए जो न मिलने के कारण ये लोग लोभ से दुष्कर्म, दुष्कर्म से कारा तक पहुँचे और वह है "विश्वास"।

विश्वास घृणा भाव को दूर कर प्रेम भाव बढ़ाता है। कारा में आने के पश्चात यदि उनसे आशा की जाए कि वे मानवीय व्यवहार करें, विश्वास करना सीखें, घृणा के बजाए प्रेम की भाषा समझें तो उन्हें सबसे पहले यह सब देना आवश्यक है।

हम गम जदा हैं लाएँ कहाँ से खुशी के गीत,
देगें वही जो पाएँगे जहाँ से हम।

समाज युगों-युगों के कारा एवं बंदी के प्रति एक नकारात्मक भाव ही रखता रहा है उसे केवल यही समझ में आता है कि किसी ने अपराध किया है अतः उसे कारागार में जाना चाहिए, जो खुशी जो सुख (?) उसने अपराध करके प्राप्त किया है उसके अनुपात में उसे पीड़ा, दुख (दंड) मिलना चाहिए। समाज उसकी जोखिम अपने ऊपर क्यों ले। यह पूर्णतः नकारात्मक एवं शुतुर मुर्गिया विचार है। किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि इन्हें "अतिथि" रूप देना है। "सर्वोदंड जितो लोको दुर्लभोहि शुचिर्नरः" यह सत्य है किन्तु दंड का प्रयोग "कामात्मा विषमः क्षुब्ध" अवस्था में होने से "दंडनेव निहन्यते" की स्थिति उत्पन्न होती है और कुम्हार की थापी की तरह होने से और "प्रहार" की क्रिया भी जारी रहती है और "धड़ा" (व्यक्ति रूपी) भी। दंड कुछ समय के लिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन मात्र है उसे कैद करने से वह न तो "पर्सन" से "नोन पर्सन" हुआ है और न उसे हमेशा के लिए मानव समाज से पृथक कर देने के

दंड से दंडित किया गया है, फलस्वरूप वह समाज का अंग है और पुनः उसे स्वतंत्र समाज में आना है तो समाज उसके अस्तित्व को कैसे नकार सकता है।

और फिर खलील जिब्रान यह कहते हुए भी तो सही हो सकता है कि अपराधी (प्रायः) फरियादी व्यक्ति द्वारा सताया जा चुका होता है किन्तु वह अपनी पीड़ा को उजागर कर अनुतोष प्राप्त करने के प्रयत्न के बजाए स्वयं ही ऐसा कृत्य कर देता है जिसे करने की "सभ्य" समाज में मनाही है और अकसर दंडित व्यक्ति निर्दोष और निष्कलंक व्यक्तियों का भार उठाने वाला होता है। कोई पवित्र और पुण्यात्मा भी उस उच्चतम से ऊंचा नहीं उठ सकता जो हम में से हर एक में मौजूद है और कोई दुष्ट और दुर्बल उस निकृष्टतम से नीचे नहीं गिर सकता जो भी हम सब में मौजूद है।

जैसे वृक्ष का एक भी पत्ता वृक्ष की खामोश जानकारी के बगैर नहीं गिर सकता उसी तरह समाज की सुस्त चेतना के बिना कोई अपराधी अपराध नहीं कर सकता।

तो ऊंची दीवारों के पीछे लोहे की सलाखों के अन्दर रहते हुए कुछ इन्सान, अपने सकारात्मक कार्यों से निरन्तर मानवीय सभ्यता के उच्च आदर्शों को छूने को प्रयत्नशील हैं किन्तु आकांक्षी हैं, समाज के सकारात्मक समाधान निष्ठ चिंतन के इन "इन्सानों" की आंखों में अपेक्षा, उपेक्षा, समीक्षा कैद है :

सलीका हो अगर भीगी हुई पलकों को पढ़ने का
ये ठहरे हुए आँसू ही अकसर बात करते हैं

बंदी समाज में आकर "विश्वास" "खुशी के गीत" दे सके इसके लिए संस्कारित करने के उद्धेश्य से "नया जीवन योजना" के रूप में बंदियों को विपश्यना (मौन ध्यान साधना) प्रेक्षा ध्यान, योगासन, प्रवचन, जीवन जीने की कला, गीत-संगीत प्रशिक्षण, नाट्य प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर देने के साथ-साथ आधुनिक उद्योग, कम्प्यूटर शिक्षा, इलेक्ट्रिक आइटम रिपेयर, हाउस वायरिंग, रेफ्रिजरेटर आदि कोर्स भी करवाए जाने की व्यवस्था की जाती है। किन्तु बंदियों की सोच में परिवर्तन हो भी जाए तो भी उसका वांछित लाभ समाज को तब तक नहीं मिल सकता जब तक समाज द्वारा उनके प्रति किए जाने वाले चिंतन में परिवर्तन न हो। समाज के यह मानने पर कि कारागार दंड रूप एवं दंड के लिए ही नहीं है बल्कि परिस्थिति वश संस्कार प्राप्त कर सकने से वंचित रहे व्यक्ति को पुनः संस्कारित कर सभ्य मानव समाज की मुख्य धारा में जोड़ने का प्रशिक्षण स्थल है—"संस्कारागार"।

❐

"यदि प्रजातंत्र की रक्षा करनी है तो इसकी रक्षा शांति के माध्यम से ही संभव है। हम देखते हैं कि पहले हिंसा अचानक ही भड़क उठती थी। आज पूरी योजना के बाद हिंसा प्रगट होती है.....।"

—श्री राजीव गांधी

महिलाओं के साथ हिंसा तथा पुलिस

डा. ओमराज सिंह

निपसिड हौज़ खास, नई दिल्ली-110016

हमारे समाज में जब कभी भी महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा या अपराधों की बात उठती है तो एक तस्वीर उभर कर आती है, घर में पति के हाथों पिटती हुई महिला या फिर दहेज के लिए जला दी गई औरत जोकि आजकल प्रतिदिन अखबारों में पढ़ने को मिलता है। लोग इन तस्वीरों को देखने के इतने आदी हो गए हैं कि उसकी कोई प्रतिक्रिया ही नहीं होती। सच्चाई यह है कि इन दो तस्वीरों के अलावा महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा के कितने ही अन्य और रूप हैं। ऐसा कहने का यह मतलब नहीं कि इन दो भयानक रूपों की गंभीरता किसी तरह से कम है बल्कि इसे पूरी समस्या के ओर छोर नापने की कोशिश करना है। हिंसा के इस पूरे वातावरण पर नजर डाले तो मालूम होता है कि महिलाएँ जन्म के पहले से ही हिंसा के दायरे में आ जाती हैं।

हिंसा आखिर है क्या?

किसी भी समस्या को समझने के लिए थोड़ा सा गहराई में जाना पड़ता है। जब महिलाओं के प्रति हिंसा की बात करते हैं तो यह भी जानना जरूरी हो जाता है कि हिंसा क्या है, वह कैसे काम करती है उसका इतिहास क्या है वगैराह। अगर पेट दर्द की शिकायत के साथ भी कोई आदमी डाक्टर के पास जाए तो वह सिर्फ पेट ही नहीं जांचता बल्कि खून, टट्टी, पेशाब की जांच भी करता है। शायद आंख, गला, और जबान भी जांचे तभी वह पूरे शरीर की कार्रवाई को समझा कर तकलीफ की जड़ में पहुंच कर दवाई दे सकता है। पेट दर्द बीमारी नहीं बीमारी का लक्ष्ण है। बीमारी शरीर के किसी भी हिस्से में छिपी हो सकती है। उसी तरह महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा एक प्रकार से अत्याचार के लक्षण हैं जो समाज की किसी निम्नतम् सोच की तरफ इशारा करते हैं।

शब्दकोश बताता है -

किसी व्यक्ति द्वारा चोट पहुंचाने या तोड़ने के इरादे से किसी दूसरे व्यक्ति या चीज के खिलाफ ताकत का इस्तेमाल करना हिंसा है जो प्रायः किसी फायदे के लिए की जाती है। हिंसा एक ऐसी दबावकारी प्रक्रिया है जो दूसरे को दबाने के लिए इस्तेमाल की जाती है। इसके पीछे कई उद्देश्य हो सकते हैं। आमतौर पर यह दूसरे से अपनी इच्छा मनवाने के लिए, अपनी ताकत दिखाने के लिए या खुद को ताकतवर महसूस करने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

हिंसा कैसे काम करती है?

यह मुख्य रूप से तीन तरीकों से कामयाब होती है :

1. यह शरीर को चोट पहुंचाती है। इससे दर्द होता है शरीर को नुकसान पहुंचने या मरने की आशंका होती है। इसे हम बाहरी तौर पर दिखने वाली शारीरिक हिंसा कह सकते हैं
2. यह शरीर के साथ-साथ या कभी-कभी सिर्फ मन को ही चोट पहुंचाती है। कभी बाहर वालों के सामने पड़ी डाट, मारपीट से ज्यादा चोट पहुंचा सकती है। यह चोट मन के आत्मसम्मान को पहुंचाती है। इससे बेइज्जती होती है। हरेक इससे बचना चाहता है।
3. हिंसा के प्रभावशाली होने का तीसरा उसका डर है। हिंसा होगी या नहीं यह न भी मालूम हो

लेकिन यदि उसके होने का डर हो तो व्यक्ति वह काम नहीं करता जिसके साथ वह डर जुड़ा है। शाम को बाहर निकलने वाली हर महिला बलात्कार की शिकार हो जाएगी ऐसा जरूरी नहीं है लेकिन इसका डर अधिकांश महिलाओं को शाम पड़े घर के भीतर रहने को मजबूर करता है। अगर वे बाहर निकलती भी हैं तो डरती हुईं। इस तरह हिंसा के डर के साथ जीना उस व्यक्ति के साथ हिंसा है।

इतिहास के पन्नों में :

यह कहना तो अत्यंत ही कठिन है कि हिंसा कब मनुष्य के जीवन का एक हिस्सा बनी। समय के किस दौर में मनुष्य ने अपने फायदे के लिए किसी दूसरे पर पहला वार किया। आदि मानव ने पेट भरने के लिए शिकार किया। शिकार के लिए हथियारों का निर्माण किया। इन हथियारों का इस्तेमाल आपसी झगड़ों में भी हुआ। इस तरह से किसी न किसी रूप में हिंसा मनुष्य के साथ आरंभ से जुड़ी रही है पर सवाल यह उठता है कि कब यह शक्ति प्रदर्शन की कार्रवाई महिलाओं की ओर मुड़ गई। समाज में हिंसा का बदलता रूप दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा है। 21वीं सदी में भी महिलाओं के साथ हिंसा का घिनौना रूप। भोजन एकत्रण की अवस्था में महिलाओं के काम का पुरुष के काम के बराबर महत्व था। वह सिर्फ भोजन इकट्ठा ही नहीं करती थी उसे संभालती थी और बच्चों को जन्म देती थी। औरत की प्रजनन शक्ति पुरुष के लिए एक चमत्कार से कम नहीं थी। प्राचीनतम से लेकर बाद के धार्मिक विश्वासों में भी माता स्वरूप की पूजा हर जगह मिलती है। खेती की खोज के साथ ही घुम्मकड़ जीवन में ठहराव आया। समूह और गांव बने आवश्यकता से ज्यादा उत्पादन होने पर माल इकट्ठा करने और भंडारण की जरूरत हुई। समूहों का नेता बना, कुछ सैनिक और कुछ दास। माल की लूट-पाट और युद्ध हुए। संपत्ति बढ़ाने की लालसा जन्मी। उसके साथ ही उस संपत्ति के अपने जायज वारिसों को देने की इच्छा, अतः औरत के श्रम का महत्व कम हुआ। अब वह सिर्फ सेवा करने वाली दासी और बच्चे जनने वाली मादा के रूप में देखी जाने लगी। **एन्गलस ने अपनी पुस्तक "द आरोजिन ऑफ द फैमिली"** में इस परिवर्तन को महिलाओं की सबसे बड़ी हार कहा है जिसने न सिर्फ स्त्री जाति को बल्कि पूरे संसार के इतिहास को प्रभावित किया।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था :

महिलाओं के दर्जे में गिरावट के साथ-साथ उसे दबाए रखने के लिए उसके खिलाफ हिंसा का इस्तेमाल हुआ। इस तरह से समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का जन्म हुआ। इस व्यवस्था के अंतर्गत परिवार का नाम पुरुष के नाम से चलता है। वही घर जमीन जायदाद का मालिक होता है जो एक पुरुष से उसके बेटे और आगे उसके बेटों को मिलता है। वह घर का मुखिया होता है। परिवार के बारे में सभी बड़े निर्णय लेने का हक उसे ही होता है। वह परिवार के बाकी सदस्यों की देखभाल और सुरक्षा भी करता है। परंतु संपूर्ण सत्ता, अधिकार व ताकत उसी के हाथ में होती है। हमको यहां यह समझना भी जरूरी है कि इस व्यवस्था के अंतर्गत हालांकि महिलाओं का दर्जा नीचा और गिरा हुआ होता है लेकिन हर महिला बराबर रूप से शोषित नहीं होती। उसकी हालत पर उसके वर्ग, जाति, धर्म आदि का असर भी पड़ता है। धनी वर्ग की महिलाएं गरीब वर्ग के पुरुष से ज्यादा ताकतवर हो सकती है। वह गरीब पुरुष का शोषण करने की ताकत भी रखती है लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने वर्ग, अपने धर्म और अपनी जाति के पुरुषों की तुलना में उसका दर्जा हमेशा दोयम रहता है। वह सदैव उनसे नीचे रहती

है। हमारे समाज में जिस प्रकार से कुछ जातियों, कुछ धर्म और कुछ वर्ग दबावकारी बन गए और कुछ दबे हुए उसी तरह एक लिंग के लोग दबावकारी समूह बन गए और दूसरे लिंग के लोग दबाए गए। साधारण शब्दों में सारे पुरुषों का दर्जा महिलाओं से ऊंचा मान लिया गया।

हिंसा का बहाव :

अतीत और वर्तमान दोनों यही बताते हैं कि दबाव और हिंसा का बहाव ताकतवर से कमजोर, उच्चवर्ग से निम्न वर्ग, उच्चजाति से निम्न जाति और इसी तरह से मर्द से औरत की तरफ होता आया है। एक समूह हिंसा करता है दूसरा उसे भोगता है। वे लोग जिनके पास ताकत है इसका इस्तेमाल उनके खिलाफ करते हैं जिनके पास ताकत नहीं है। यह ताकत शरीर की नहीं होती बल्कि कभी जाति की, कभी धर्म की, कभी पैसे या रुतबे की तो कभी लिंग की होती है। तभी एक दुबला पतला धनी आदमी अपने से तगड़े गरीब को मार लेता है, बेइज्जत कर देता है या कोई डेढ़ पसली का पति अपनी हट्टी कट्टी पत्नी को पीटता है और वह चुपचाप पिटती रहती है। यह ताकत उस धनी आदमी को या उस पति को बहुत जगहों से मिलती है। सामाजिक व्यवस्था, नियम, रीति रिवाज सब दबावकारी समूह के फायदों को ध्यान में रख कर बनाए जाते हैं। कभी-कभी इस हिंसा का बहाव बदलता भी है वह भी बदला लेने के लिए। कभी-कभी शोषण एवं उत्पीड़न बहुत अधिक बढ़ जाने पर दबे हुए समूह भी हिंसा का इस्तेमाल करते हैं।

जिस समाज में जितनी अधिक ऊंच-नीच, वर्ग भेद, जाति भेद होते हैं वहां उतनी अधिक हिंसा होती है। समाज में शांति स्थापित नहीं हो पाती तथा राष्ट्र बिखरता अथवा टूटता रहता है। हिंसा के कारण बंगला देश, पाकिस्तान से अलग हुआ तथा एक देश दो देशों में बंट गया।

पुलिस

आज़ादी के बाद हमारे देश की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया है। धर्म, संयुक्त परिवार, जाति, प्रथा, परम्परा आदि के प्रभाव व दबाव में कमी आने के कारण जन-सामान्य के नैतिक मूल्य व परम्पराएं भी बदल गए। विकास के कारण समाज की परिस्थितियां बदलने से पुलिस की भूमिका जटिल और कठिन हुई है। पुलिस को उसकी परिवर्तित भूमिका तथा निर्वाह के तरीकों की जानकारी देने की जिम्मेदारी बुद्धिजीवी वर्ग और समाज-सुधारकों की है। आज के दौर में पुलिस को न तो जनता की दोस्त बनकर और न ही उसकी नकरात्मक सोच रखकर कार्य करना है। पुलिस का नियंत्रण जनता पर अत्यंत ही आवश्यक है। पुलिस का जनता पर नियंत्रण का तरीका स्नेहपूर्ण तथा मददगार होना चाहिए। जनता का विश्वास पुलिस पर इतना जरूर होना चाहिए कि वह कानून का निर्वाह करने में पुलिस को सहयोग करे तथा स्वयं अनुशासन में रहे। पुलिस के व्यवहार कुशल होने से अपराधी भी सुधर सकता है तथा बदतमीजी के कारण भला तथा सज्जन पुरुष भी अपराधी बन सकता है।

भारतीय समाज में अत्याचारों, हिंसा की शिकार निर्दोष महिलाओं तक की भी पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर उपेक्षा की जाती है। महिला पुलिस, नारी संगठन आदि के जरिए इस प्रकार की महिलाओं का मनोबल थोड़ा बढ़ा है। पुलिस द्वारा किए गए त्याग तथा बलिदान पर उस समय पानी फिर जाता है जब कोई पुलिसकर्मी किसी महिला को जो सुरक्षा के लिए उसके पास आती है तथा पुलिसवालों की हवस की शिकार बन जाती है। कुछ पुलिसवालों के गलत आचरण के कारण जनता का विश्वास पुलिस विभाग पर से उठ जाता है। इस प्रकार के पुलिसवालों के

लिए नैतिकता का प्रशिक्षण जरूरी है। इसमें रचनात्मक विकास होगा तथा पुलिस की जनता के बीच छवि सुधरेगी, संबंध अच्छे होंगे और समाज साफ-सुथरा होगा और देश का सर्वांगीण विकास होगा।

सन्दर्भ

डा. ओमराज सिंह : शहरी परिप्रेक्ष्य में महिला पुलिस की भूमिका, संस्कृति, नई दिल्ली।

डा. ओमराज सिंह : सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महिलाएं, अरावली इंटरनेशनल, नई दिल्ली।

डा. ओमराज सिंह : अपराध, पुलिस तथा दलित, अरावली इंटरनेशनल, नई दिल्ली।

डा. ओमराज सिंह : सेवारत महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन, अरावली इंटरनेशनल, नई दिल्ली।

❐

"पुलिस कर्मचारियों का यह प्रयास होना चाहिए कि वे अपने बारे में अच्छी धारणा पैदा करें, लोगों के मित्र होने की धारणा पैदा करें। स्वतंत्रता से पहले के दिनों में पुलिस को विदेशी ताकत द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले दमन के हथियार के रूप में जाना जाता था। आज पुलिस कर्मचारियों को लोगों के मित्र के रूप में कार्य करना होगा और उन सभी खराबियों और बुराइयों को निकाल फेंकना होगा, जो इस संगठन के साथ जुड़ गई हैं।"

—श्रीमती इंदिरा गांधी

भारतीय नारी : उत्पीड़न के सहस्त्र चक्र

***डा. एस. अखिलेश**

परिवार समाज का सबसे प्रथम संगठन और सार्वभौमिक संस्था है। यह एक ऐसा सामाजिक समुदाय है जिसके सदस्य रक्त संबंध, प्रेम तथा वात्सल्य भावना में बंधे रहते हैं तथा एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। प्रसिद्ध समाजवैज्ञानिक **मैकाइवर एवं पेज** ने अपनी पुस्तक **"सोसाइटी"** में लिखा है कि परिवार यौन संबंध पर आधारित वह समुदाय है, जिसमें बच्चों का जन्म होता है और उनका पालन-पोषण किया जाता है। इसमें कुछ सहायक और परोक्ष संबंधों के व्यक्ति भी रहते हैं किन्तु यह एक ऐसी विशिष्ट इकाई है, जिसमें पति-पत्नी और बच्चों का होना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। इस तरह **"परिवार"** एक बुनियादी सामाजिक संस्था है। यह प्राथमिक समूह का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। सामाजिक नियंत्रण की यह सर्वाधिक प्रभावशाली और मजबूत एजेन्सी है। परिवार, स्वस्थ रूप में, एक तरफ जहां बाल अपचार और पारिवारिक हिंसा के विरुद्ध मजबूत बीमा है, वहीं दूसरी तरफ, भग्न रूप में बच्चों एवं समाज के प्रति अपने दायित्व के निर्वहन में अपंग साबित होता है। परिवार व्यवहार या दुर्व्यवहार की वह प्रथम प्रशिक्षणशाला है, जहां बालक-बालिकाएं एवं अन्य सभी सदस्य संस्कारित होते हैं। सामाजिक मूल्यों, आदर्शों एवं व्यवहार की दीक्षा बालक-बालिकाओं को सबसे पहले परिवार से ही प्राप्त होती है। किन्तु बीसवीं शताब्दी में हुए परिवर्तन ने इस बुनियादी संस्था की भी जड़ें हिला दी हैं। पश्चिमी देशों के साथ ही साथ भारत में भी परिवार के स्वरूप और उसके कार्यों में अन्तर आया है। प्रसिद्ध समाजवैज्ञानिक **इलियट और मैरिल** ने अपनी पुस्तक **"सोशल डिसऑर्गनाइजेशन"** में इस स्थिति की व्याख्या करते हुए कहा है कि यदि सांस्कृतिक, प्राविधिक या अन्य किन्हीं कारणों से सामाजिक परिवर्तन आता है और उसके कारण मनुष्य की आवश्यकताओं और इच्छाओं में बदलाव आता है तो इन इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली संस्थाओं में भी बदलाव आना अनिवार्य हो जाता है। परिवर्तन के कारण सामाजिक मूल्य बदलते हैं और उनके कारण उन मूल्यों की परिभाषाएं भी बदलती हैं किन्तु जिन परिवारों में इस परिवर्तन को सहज ढंग से स्वीकार नहीं किया जाता वहां पारिवारिक तनाव की परिस्थितियां विकसित होती हैं और आगे चलकर पारिवारिक हिंसा का कारक बन जाती हैं। दूसरे शब्दों में, पारिवारिक तनाव का परिणाम पारिवारिक हिंसा है। तनाव से ही पारिवारिक विघटन की स्थिति निर्मित होती है। यह तनाव पति और पत्नी के बीच ही नहीं वरन् परिवार के अन्य सदस्यों के बीच भी उत्पन्न हो सकते हैं। जब यह तनाव और उससे उत्पन्न हुए झगड़े, विशेष रूप से किसी सामाजिक या पारिवारिक मान्यताओं या सम्पत्ति के विषय को लेकर होता है तब परिवार की एकता को खतरा तो उत्पन्न होता ही है साथ ही साथ पारिवारिक हिंसा भी जन्म लेती है। परिवार में एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना से ही पारिवारिक हिंसा का वातावरण निर्मित होता है। इस तरह पारिवारिक हिंसा सार्वभौमिक रूप में चिंता का विषय है। हम चाहे अतीत की बात करें अथवा वर्तमान की, संसार का कोई भी कोना इस समस्या से अछूता नहीं है। समाजवैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों में गिरावट, अश्लील साहित्य, दूरदर्शन एवं सिनेमा, पारिवारिक नियंत्रण का

*भारत सरकार, गृह मंत्रालय द्वारा प्रतिष्ठित पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से चार बार सम्मानित, संप्रति—असिस्टेंट प्रोफेसर (सीनियर ग्रेड), स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग एवं शोध केंद्र, गवर्नमेंट टी.आर.एस. सेंटर ऑफ एक्सिलेंस, आटोनॉमस कालेज, रीवा (म.प्र.)

कमजोर होना, अपराधी गिरोहों के षड्यन्त्र तथा निर्धनता से पारिवारिक हिंसा की घटनाओं में व्यापक तौर पर वृद्धि हुई है। **सेण्टर ऑफ कंसर्न फॉर चाइल्ड लेबर** द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण में कुछ सनसनीखेज तथ्य प्रकाश में आए हैं, जिनसे पारिवारिक व्यभिचार के बढ़ने के संकेत मिलते हैं। पिता, भाई तथा अन्य नजदीकी पुरुष रिश्तेदार द्वारा पारिवारिक हिंसा की घटनाएं नैतिक मूल्यों के पतन की पराकाष्ठा ही कही जा सकती है। वास्तव में इन सबके लिए समाज का पर्यावरण तथा प्रचलित सांस्कृतिक मूल्य सबसे अधिक जिम्मेदार हैं। भारत में बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण ने सामाजिक वातावरण को दूषित कर दिया है। व्यक्ति पर परिवार एवं पड़ोस के नियंत्रण का ढीला होना नगरों की भीड़-भाड़ युक्त परिस्थितियों, घनी एवं गंदी बस्तियों का अनैतिक वातावरण, युवा वर्ग में मद्यपान तथा नशीले पदार्थों के प्रति बढ़ती प्रवृत्ति, तनावपूर्ण जीवन, व्यापारिक मनोरंजन और उत्तेजक तथा अश्लील साहित्य ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में असंतुलन पैदा कर दिया है।

महिलाओं के प्रति अपराध को तीन वर्गों में वगीकृत किया जा सकता है।

महिलाओं के प्रति अपराध का वर्गीकरण

1. आपराधिक हिंसा — बलात्कार एवं अपहरण,
2. घरेलू (पारिवारिक हिंसा) — दहेज संबंधी हत्या, पत्नी का उत्पीड़न,
3. सामाजिक हिंसा — पत्नी एवं पुत्रवधु को मादा भ्रूण की हत्या के लिए बाध्य करना, महिलाओं से छेड़छाड़, विधवा को सती होने के लिए बाध्य करना, दहेज के लिए तंग करना एवं स्त्री को सम्पत्ति से बेदखल करना।

भारतीय समाज में विगत पांच वर्षों (1998-2002) में महिलाओं के प्रति घटित होने वाले अपराधों की स्थिति निम्नवत् पाई गई है–

क्र.	पारिवारिक हिंसा के स्वरूप	वर्ष					प्रतिशतीय अंतर
		1998	1999	2000	2001	2002	2001:2002
1.	बलात्कार	15151	15468	16496	16075	16373	1.8
2.	व्यपहरण एवं अप.	16351	15962	15023	14645	14506	–0.9
3.	दहेज मृत्यु	6975	6699	6995	6851	6822	–0.4
4.	उत्पीड़न	41376	43923	45778	49170	49237	0.1
5.	छेड़खानी	30959	32311	32940	34124	33943	–0.5
6.	यौन उत्पीड़न	8054	8858	11024	9746	10155	4.2
7.	लड़कियां का अनैतिक व्यापार	146	1	64	114	76	–33.3
8.	सती निवारण अधिनियम	0	0	0	0	0	–
9.	अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम	8695	9363	9515	8796	11242	27.8
10.	महिलाओं का अशिष्ट रूपण(प्रतिषेध) अधिनियम	190	222	662	1052	2508	138.4
11.	दहेज प्रतिषेध अधिनियम	3578	3064	2876	3222	2816	–12.6
	योग	**131475**	**135771**	**141373**	**143795**	**147678**	**2.7**

सन् 2002 की स्थिति को पाई डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्ष 2002 में महिलाओं के विरुद्ध हुए अपराधों का प्रतिशत विवरण

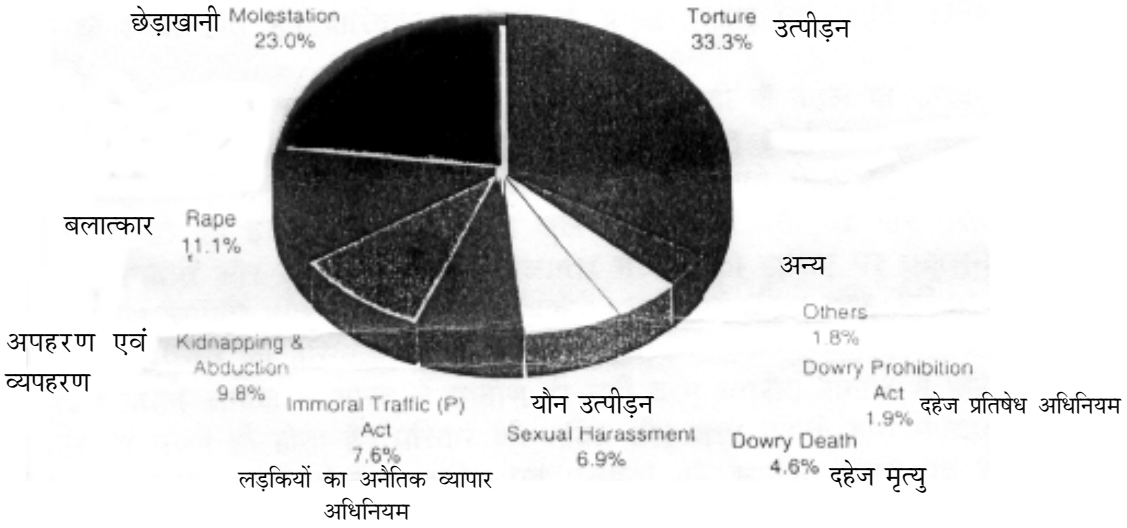

1995 की स्थिति की तुलना करने पर यह पाया गया है कि उक्त अपराधों में लगातार वृद्धि होती जा रही है इस वृद्धि को नीचे रेखाचित्र में प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्ष 1995 से महिलाओं के विरुद्ध हुए अपराधों की घटनाओं एवं दरों में प्रतिशत बदलाव

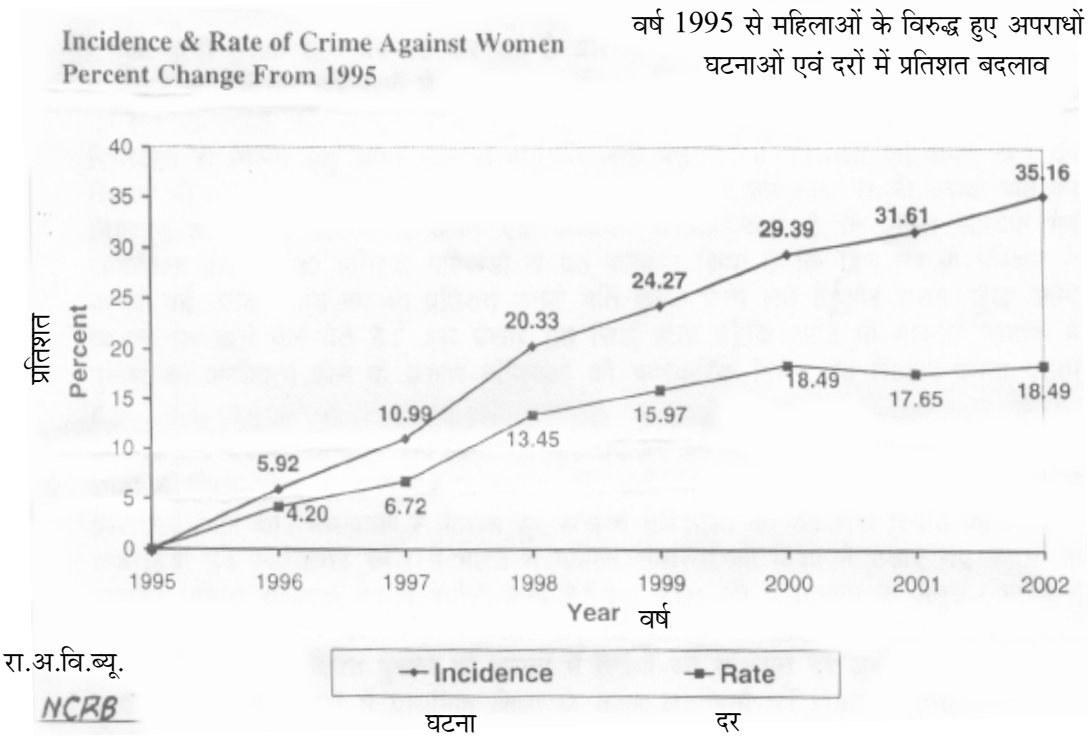

उक्त स्थिति चिंतनीय है। प्रश्न यह उठता है कि समाज में घटित होने वाले इन अपराधों के मुख्य कारक क्या हैं? पारिवारिक हिंसा से पीड़ित महिलाएँ असहाय और अवसादग्रस्त होती हैं। ऐसी महिलाएँ दबावपूर्ण परिस्थितियों में रहती हैं, सामाजिक परिपक्वता की उनमें कमी होती है जिसके कारण उन्हें व्यवहार संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी महिलाओं के पति और ससुराल वाले विकृत व्यक्तित्व के लोग होते हैं तथा मंदिरा या अन्य व्यसनों के आदी होते हैं। पारिवारिक हिंसा के अपराधी व्यक्ति हीन भावना के शिकार होते हैं, अवसादग्रस्त होते हैं और उनमें आत्मसम्मान की कमी पाई जाती है। ऐसे लोग एक तरह से मनोरोगी होते हैं, जिनके पास संसाधनों, योग्यता और प्रतिभा अभाव होता है। ऐसे लोगों की प्रकृति असामान्य होती है। शक करना उनकी आदत होती है। पारिवारिक जीवन में तनावपूर्ण स्थितियों का वे सामना करते रहते हैं। **डॉ. राम आहूजा** ने यह निष्कर्ष अपने अध्ययन में दिए हैं। ऐसे व्यक्ति बचपन में हिंसा के शिकार हो चुके होते हैं और बहुधा मदिरापान या अन्य व्यसन के आदी होते हैं। पारिवारिक हिंसा के प्रमुख कारण निम्नलिखित निरूपित किए जा सकते हैं–

(1) परिवार में स्त्री की भूमिका गौण होना — सातवीं शताब्दी के पहले या उसके बहुत बाद तक स्त्री की भूमिका परिवार में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। प्राचीन आर्य समाज में इन्हें सामान्यतया **"जनि"** कहा जाता है। जिसका अर्थ था जन्म देने वाली। आगे चलकर उसे जननी कहा गया। क्योंकि स्त्री ही वह इकाई थी जिसे अपने कुल या वंश का पता था और उसी ने परिवार को अधिक सुसंगठित और सुसंगत बनाया। कालान्तर में स्त्री को हाशिए पर धकेलने के प्रयास हुए, क्योंकि पुरुष सम्पत्ति और विरासत पर अधिकार रखने लगे। इस तरह परिवार के अन्दर नारी की तुलना में पुरुष की हैसियत बढ़ती गई।

(2) पुरुष प्रधान समाज — भारत में ग्रामीण ही नहीं वरन् नगरीय समाज में परिवार का मुखिया आमतौर पर पुरुष ही होता है। परिवार की शक्ति और सत्ता उसके हाथ में रहती है। अशिक्षित परिवारों में पुरुष अपनी श्रेष्ठता, शक्ति एवं पुरुषत्व को स्थापित करने एवं साबित करने के लिए महिलाओं पर अत्याचार करता है, जिससे घरेलू हिंसा होती है। **न्यायमूर्ति डॉ. वेनूगोपाल** ने एक सर्वेक्षण की समीक्षा करते हुए कुछ तथ्य प्रस्तुत किए हैं[1] जिनसे यह स्पष्ट होता है कि आज भी परिवारों में नारियां पुरुषों के अधीन हैं। पति को बताए बिना कहीं बाहर चले जाने पर, बच्चों और घरवालों की देखभाल न करने पर, सास-ससुर, देवर या ननद का सम्मान न करने पर, उनकी मांग तथा स्वाद के अनुसार भोजन न बनाने पर, पति के यह समझने पर कि उसकी पत्नी उसके साथ बेवफाई कर रही है और विवाह के समय वांछित पैसा और वस्तुएँ न लाने पर 60 प्रतिशत महिलाओं ने यह स्वीकार किया है, उनके साथ मारपीट की जाती है। 68 प्रतिशत महिलाओं को बाजार जाने हेतु, 76 प्रतिशत महिलाओं को अपनी सहेलियों अथवा रिश्तेदारों से मिलने हेतु अपने पति से अनुमति लेनी पड़ती है। महिलाओं को अपने खर्चे का विवरण भी अपने पति को देना पड़ता है। कामकाजी महिलाओं की आय पर भी उसके पति का नियन्त्रण रहता है। लेखक ने अपने एक अध्ययन में यह पाया है कि निम्न आर्थिक एवं सामाजिक वर्ग की 30 प्रतिशत महिलाओं ने यह स्वीकार किया है कि दिन भर के परिश्रम से कमाई गई उनकी आय का 40 प्रतिशत उनके पति उनसे छुड़ा लेते हैं और शराब, जुआ आदि व्यसनों पर खर्च कर देते हैं।[2] इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि आज भी भारतीय समाज में पुरुषों का

1. P. Venugopal, Different Forms of Violence and Harassment against Womenin India. Indian Journal of Criminology, Vol. 29, 2001, page 1-7
2. Dr. S. Akhilesh,Forms of Harassment against Women of Backward Classes in Bichhiya, page 01-02.

आधिपत्य होने के कारण महिलाओं को पारिवारिक हिंसा का शिकार बनना पड़ता है।

(3) साक्षरता दर की कमी — वैदिककाल में महिलाएं वेद की ऋचाएं लिखने में समर्थ थीं। दूसरे शब्दों में शिक्षा-दीक्षा में वे पुरुषों के समान थीं। इसीलिए उस काल में स्त्रियों का समाज में प्राथमिक स्थान था। मध्यकाल से प्रारम्भ हुए ह्रास ने महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति को निम्नतर बना दिया है। स्वतंत्रोत्तर काल में भारत में महिला साक्षरता की दिशा में उठाए गए कदमों के बावजूद महिला साक्षरता दर में पर्याप्त कमी है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में महिलाओं की साक्षरता दर 54.16 प्रतिशत पाई गई है, जबकि पुरुषों की साक्षरता दर 75.85 प्रतिशत रही है। इस तरह पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की साक्षरता दर अभी भी बहुत कम है। आज भी ग्रामीण अंचलों में प्राथमिक शिक्षा के ऊपर लड़कियों को शिक्षा दिलाना पसन्द नहीं किया जाता है। माध्यमिक या उच्च शिक्षा दिलाने की जगह उनका विवाह कर दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसी लड़कियां परिवार में जीवन भर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पुरुषों पर आश्रित रहती हैं। नगरीय समाज के श्रमिक वर्ग में जहां महिलाएं आजीविका उपार्जित करने में पुरुषों के बराबर ही श्रम करती हैं, वहां भी अशिक्षा के कारण वे अपने पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित रखी जाती हैं। इस प्रकार अशिक्षा के कारण महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हो पा रही हैं और परिवार में हो रहे उत्पीड़न को झेल रही हैं। महिलाओं और बेटियों के साथ हो रहे सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की क्षमता का विकास शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। इसी तरह जनसंख्या वृद्धि दर को कम करने में भी महिलाओं का शिक्षित होना आवश्यक है।

(4) दुराग्रहपूर्ण सामाजिक मान्यताएं— पारिवारिक हिंसा का एक महत्वपूर्ण कारण भारतीय समाज में महिलाओं को हीन और अबला मानने की दुराग्रहपूर्ण मान्यता है। मध्यकाल में स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा बंद कर दी गई और पर्दा प्रथा ने नारी की स्थिति को दयनीय बना दिया। कालान्तर में समाज ने अपने इन अन्यायपूर्ण कृत्यों को धार्मिक जामा पहना दिया। बाल-विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध इनके उदाहरण हैं। ऐसी दुराग्रहपूर्ण कुप्रथाएँ पुरुषों को स्त्रियों के साथ मानसिक एवं शारीरिक प्रताड़ना देने की छूट प्रदान करती हैं।

(5) स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता— भारतीय समाज में आज भी महिलाएँ आर्थिक रूप से पुरुषों पर आश्रित हैं। पत्नी पति पर पूरी तरह से आश्रित रहती है इसलिए पत्नी को पति की हर जायज और नाजायज बात माननी पड़ती है। नाजायज बात न मानने की स्थिति में पत्नी को हिंसा का शिकार बनना पड़ता है। आर्थिक निर्भरता के कारण उसे सदैव यह भय रहता है कि यदि उसे घर से बाहर निकाल दिया गया तो उसके जीवन-यापन का कोई सहारा नहीं रहेगा इसलिए वह पारिवारिक उत्पीड़न को सहती रहती है।

(6) धार्मिक व्यवस्थाएं — भारत में सामाजिक मान्यताओं और परम्पराओं को धार्मिक बंधनों से जकड़ दिया गया है। पारिवारिक हिंसा सामाजिक बुराइयों की देन है। नारी को बचपन में पिता के अधीन, युवाकाल में पति के अधीन और वृद्धावस्था में पुत्रों के अधीन बना दिया गया। पुत्र को जन्म देने वाली स्त्री को अधिक महत्व किन्तु पुत्री को जन्म देने वाली माता को प्रताड़ना इन्हीं धार्मिक मान्यताओं का परिणाम है। सती प्रथा जैसी घृणित व्यवस्था धर्मयुक्त मानी गई है। देवदासी प्रथा भी ऐसी ही प्रथा है जिसने समाज में अनेक विकृतियां उत्पन्न की हैं।

(7) महिलाओं को भोग्या मानने की परम्परा—भारतीय समाज में बहुपत्नी विवाह यौन शोषण की कुप्रथा का परिचायक रहा है। प्राचीनकाल में भोग-

विलास की वस्तुओं के साथ सजी-धजी स्त्रियां भी दान दी जाती थीं। इन परिपाटियों ने समाज में नारी को भोग-विलास की वस्तु मानने की शुरूआत की। आज भी महिलाओं को "भोग्या" मानने की परम्परागत दुराग्रहपूर्ण मान्यता विद्यमान है। हमारे समाज में आज अश्लील हिंदी फिल्मों, धारावाहिकों, विज्ञापनों, पत्र-पत्रिकाओं और कामोत्तेजक साहित्य का जाल पसरता जा रहा है। इनके माध्यम से सैक्स, नग्नता और अवैध संबंधों को बढ़ावा मिला है। इसके अलावा रोज-ब-रोज होने वाले फैशन शोज, सौंदर्य प्रतियोगिता तथा मनोरंजन के नाम पर कराए जाने वाले अश्लील एवं भौंडे आयोजनों से भी समाज में अश्लीलता और नग्नता बढ़ी है। इसके अलावा महिलाओं को सेक्स की पूर्ति की वस्तु मात्र मानने की प्रवृत्ति बढ़ी है। ऐसे में विकृत और कमजोर मानसिकता वाले लोगों के लिए अपनी बहन-बेटियों को अपनी कामवासना की पूर्ति का साधन मानना कोई आश्चर्य नहीं है। आधुनिक समाज में नारी की कमनीय काया को विज्ञापनों में जिस तरीके से उपयोग किया जा रहा है उससे यही लगता है कि किसी भी वस्तु का विज्ञापन नारी के बिना हो ही नहीं सकता। विज्ञापनों को देखकर कोई भी यह कह सकता है कि आज **नारी देह और विज्ञापन** एक-दूसरे के पर्यायवाची हो गए हैं। विज्ञापन चाहे साबुन का हो, सिगरेट का या टेलीविजन का, सब जगह नारी है सब उसकी कोमल कमनीय देह है। विज्ञापन में दिखाए जा रहे इन दृश्यों का कुप्रभाव समाज पर पड़ रहा है। विज्ञापनदाता विज्ञापन के लिए यह तर्क देते हैं कि नारी देह से विज्ञापन आकर्षक बन जाता है किन्तु वास्तविकता यह है कि विज्ञापनदाता वस्तु की गुणवत्ता की ओर कम ध्यान देकर स्त्री की अधिकाधिक खुली देह दिखाकर शालीनता की सारी सीमाएं लांघते जा रहे हैं। **भारतीय दण्ड संहिता की धारा 292 से 294** में अश्लील विज्ञापन विरोधी प्रावधान रखे गए हैं लेकिन इनसे न तो विज्ञापन ही सेंसर हुए और न ही नारी देह की प्रदर्शनी रूकी है।

(8) बढ़ती आर्थिक विषमता — एक तरफ समाज में कुछ लोगों के पास अकूत धन दौलत आ गई है, दूसरी तरफ बहुसंख्यक जनता भयानक गरीबी और अभाव में जीवन बसर कर रही है। इस तरह की आर्थिक विषमता गरीबी से जूझ रहे लोगों के मन में असंतोष और कुंठा पैदा करती है जिसके कारण लोग घोर हताशा और निराशा में सीमाओं को लांघ जाते हैं। परिवार में बाल बलात्कार के ज्यादातर मामलों के झुग्गी-झोपड़ी इलाकों तथा पुर्नवास एवं निम्न-मध्यम वर्ग के लोगों की कालोनियों में होने का यही कारण है।

(9) आनुवांशिक कारण — कई मनोवैज्ञानिकों का मानना है पारिवारिक हिंसा खास कर अपनी नाबालिग बहन-बेटियों के साथ बलात्कार या यौन अपराध करने वाले मानसिक विकृति से ग्रस्त होते हैं। इस विकृति को **"बिहेवियर डिस्आर्डर"** कहा जाता है। यह विकृति गुण सूत्र वाहक **'क्रोमोजोम'** में गड़बड़ी होने के कारण उत्पन्न होती है। इस धारणा का समर्थन करने वाले मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि समाज में हमेशा से ही पारिवारिक दायरे में बाल-बलात्कार की घटनाएं होती रही हैं और भविष्य में होती रहेंगी। पहले ऐसी घटनाएं प्रकाश में नहीं आ पाती थीं लेकिन अब जागरूकता तथा संचार माध्यमों के अधिक सक्रिय होने के कारण ऐसी घटनाएं पहले की तुलना में अधिक प्रकाश में आ रही हैं।[1]

(10) वैवाहिक जीवन में बढ़ता तनाव — आज तेजी से बदल रही आर्थिक और सामाजिक स्थितियों तथा हमारे समाज में पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार की व्यवस्था तो टूट ही चुकी है लेकिन एकल परिवार व्यवस्था भी तेजी से चरमरा रही है। वैवाहिक जीवन तेजी से तनावपूर्ण होता जा रहा है। पारिवारिक घुटन, टकराव, झगड़े, मारपीट, संबंध विच्छेद और तलाक के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं। पति-पत्नी के बीच के संबंधों के कलहपूर्ण होने का असर बाकी

पारिवारिक रिश्तों पर भी पड़ता है। क्योंकि परिवार की धुरी पति-पत्नी के बीच का संबंध होता है और अगर वही टूट जाए तो सभी पारिवारिक रिश्ते टूट कर बिखर जाते हैं। ऐसी स्थिति में पुरुष उच्छृंखल हो जाता है और उसकी हवस का शिकार बहन-बेटी तक बन जाती हैं।

(11) यौन आकर्षण — व्यक्ति के भीतर यौन आकर्षण की नैतिक दुर्बलता भी महिलाओं के प्रति हो रहे अपराध का एक कारक है। आज की फिल्में एवं आज का पर्यावरण भी इस दुर्बलता को उघाड़ने में सहायक हो रही हैं। अनेक कुसंस्कारियों के मन में यह दृश्य और परिवेश उद्दीपन का कार्य करते हैं और वे अपना नियंत्रण खो बैठते हैं। काम भावना नैसर्गिक है इसलिए उसे नियंत्रित रखने के लिए पारिवारिक व सामाजिक मर्यादाएं व व्यवस्थाएं हैं। किन्तु भारत में विगत कुछ वर्षों से फैल रही पाश्चात्य प्रवृत्तियां इन मर्यादाओं व व्यवस्थाओं को तोड़ने में सहायक हो रही हैं। पश्चिमीकरण, शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण के तत्व आज संयुक्त परिवार प्रणाली को लगभग जड़मूल से उखाड़ने में सफल हो चुके हैं। पश्चिमीकरण, काम वासनाओं को उभारने वाला पर्यावरण, सस्ता अश्लील साहित्य, फिल्में, आधी रात्रि तक चलते बॉर, शराब व सेक्स के विज्ञापन एवं परिदृश्य आज भारतीय मानस के सामाजिक व नैतिक आचरण को दूषित करने में सहायक हो रहे हैं जिनसे अपहरण, छींटाकशी, छेड़छाड़ जैसे महिलाओं के साथ होने वाले अपराध बढ़ रहे हैं।

(12) मादक द्रव्यों का बढ़ता हुआ प्रयोग— हमारे समाज में शराब, सिगरेट, गॉजा, स्मैक, हेरोइन जैसे मादक पदार्थों का नशा तेजी से बढ़ रहा है। नशे के आलम में लोग विवेक-शून्य हो जाते हैं और कुछ भी कर बैठते हैं। ऐसे लोगों को अपने-पराए का बोध नहीं रह जाता और वे अपनी बहन-बेटियों के साथ दुष्कर्म कर बैठते हैं।

(13) धन लिप्सा व बढ़ती हुई आकांक्षाएं— आज समाज में लोगों की आकांक्षाएं नित नये रूप से बढ़ती जा रही हैं। इससे धन लिप्सा की मनोवृत्ति भीषण रूप से बढ़ गई है। धन सम्पत्ति बटोरने की एक ऐसी अंधी होड़ शुरू हुई है कि लगता है कि आज के मनुष्य का प्राथमिक उद्देश्य मात्र धन कमाना हो गया है। ऐसी बढ़ती हुई आकांक्षाओं एवं धन लिप्सा की प्रवृत्ति ने भारत में दहेज हत्या और नारी उत्पीड़न के अपराध को व्यापक रूप से फैला दिया है। इच्छित दहेज न लाने वाली बहुओं के साथ ससुराल में उनका उत्पीड़न किया जाता है और आए दिन समाचारपत्रों में उन्हें जला देने की घटनाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं। वास्तव में समाज में उपभोक्ता और भोगवाद की संस्कृति के हावी होने के कारण आज पैसा ही सब कुछ हो गया है। यही चरित्र बन गया है। एक समय कहा जाता था कि धन गया कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया कुछ गया पर यदि चरित्र चला गया तो सब कुछ चला गया। लेकिन आज पुरानी मान्यताएं उलट गई हैं। आज लोग चरित्र और नैतिकता को ताक पर रखकर पैसा कमाने के चक्कर में लगे हुए हैं। उपभोक्तावादी सोच को बढ़ावा देने में विदेशी चैनलों के जरिए पश्चिमी संस्कृति को बढ़ावा दिया जाना और विज्ञापनों का बढ़ता प्रभाव मुख्य है। समाज में पैसे कमाने की होड़ इस कदर बढ़ गई है कि सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों और नैतिकता की कोई कदर नहीं रह गई है। आज नैतिकता, ईमानदारी और पवित्रता जैसे मूल्यों का तेजी से ह्रास हो रहा है। ऐसे में पारिवारिक रिश्तों की पवित्रता और मर्यादा समाप्त होती जा रही है। भारतीय समाज में इस तरह नैतिक अवमूल्यन क्रमिक ढंग से बढ़ता जा रहा है। अब तो समाज में लोग किसी भी जघन्य अपराध को सुनकर कह देते हैं, यहां सब कुछ चलता है। इसका एक कारण हमारी सामाजिक व्यवस्था तो है ही किन्तु साथ ही इसके लिए भारत की कानून व्यवस्था और भारत की राजनीति में अनैतिक आचरण युक्त व्यक्तियों का बढ़ता हुआ अनुपात भी है।

भारत सरकार ने घरेलू हिंसा की बढ़ती हुई घटनाओं को रोकने की दिशा में एक सराहनीय कदम बढ़ाया है। मंत्रिमण्डलीय स्वीकृति के पश्चात् केन्द्र सरकार ने संसद (लोकसभा) में 22 अगस्त 2005 को **"दि प्रोटेक्सन आफ वूमेन फ्राम डोमेस्टिक वायलन्स बिल, 2005"** प्रस्तुत किया है। इसे अब दोनों सदनों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। यह विधेयक महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचाने के क्षेत्र में मील का एक पत्थर सिद्ध होगा। इस विधेयक में महिलाओं को शारीरिक, यौन, शाब्दिक, भावनात्मक तथा आर्थिक उत्पीड़न से रोकने के लिए विधिक व्यवस्थाएं की गई हैं। इस विधेयक में वास्तविक उत्पीड़न या उत्पीड़न की धमकी को घरेलू हिंसा के दायरे में स्पष्ट रूप से लाया गया है। इसमें महिला या उसके रिश्तेदारों से दहेज की मांग को भी अपराध के रूप में शामिल किया गया है। घरेलू हिंसा मानवाधिकार का उल्लंघन है। अभी भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498 (ए) के अनुसार पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा की जाने वाली क्रूरता दण्डनीय अपराध है। अब इस विधेयक में उत्पीड़न करने वाले लोगों के दायरे में परिवार के साथ रहने वाले सदस्यों को भी शामिल किया गया है, जो रक्त संबंध, वैवाहिक संबंध या अन्य किसी प्रकार से रिश्तेदारी की प्रकृति में आते हैं। संयुक्त परिवार में रहने वाली सभी महिला सदस्यों को इस विधेयक द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया है। जैसे परिवार में रहने वाली बहनें, रिश्तेदार विधवायें, माताएं या अन्य महिलाएं। इन महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में इनके अधिकार को मान्यता देने वाली विधि को तार्किक रूप से विस्तृत किया गया है। इस विधेयक में स्त्री को उसके ससुराल के निवास स्थान में अथवा उसके पैतृक निवास में रहने के अधिकार को स्वीकार किया गया है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उस मकान में उनका कोई स्वत्वाधिकार हो। महिलाओं के इस अधिकार को सुनिश्चित कराने के लिए मजिस्ट्रेट को अधिकार प्रदान किए गए हैं। इस विधेयक ने महिलाओं की बात महिला आयोग, थानों या मजिस्ट्रेट के पास पहुँचाने के लिए गैर-सरकारी संस्थाओं की मदद लेने की स्वीकृति दी है तथा स्त्री की सुरक्षा के लिए सुरक्षा अधिकारियों को नियुक्त करने का प्रावधान भी किया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इस विधेयक के बारे में महिलाओं में जागरूकता पैदा करने के लिए अभियान चलाया जाए। साथ ही पुरुषों की मानसिकता बदलने के लिए भी समाज में प्रयास किए जाएं, क्योंकि भारतीय समाज में जहाँ धर्म और पारम्परिक रूढ़ियाँ तमाम चीजें तय करती हैं, वहाँ सिर्फ कानून पर्याप्त नहीं है।

❐

"आज पुलिस कर्मचारियों से लोगों की सेवा करने की अपेक्षा की जाती है। उनके ऊपर प्राधिकार का प्रयोग करने की नहीं और परिणामस्वरूप उन्हें जो भी कार्य करने के लिए कहा जाता है उसमें उन्हें लोगों का सहयोग और विश्वास प्राप्त करना पड़ता है और यह इन्हें दिया जाना चाहिए।"

—डा. जाकिर हुसैन

सामाजिक सुरक्षा और जुर्म

महेंद्र सिंह अहलावत

थाना प्रभारी, मुखर्जी नगर, नई दिल्ली

जुर्म आदि काल से होते आए है। जब से मनुष्य ने अपनी संपत्ति की पहचान शुरू की है तब से ही जुर्म की उत्पत्ति हुई है। जुर्म की उत्पत्ति में "हेवस एन्ड हेवस नोट" का सिद्धांत काम करता है। जिनके पास नहीं है वह भी चाहते है कि हमारे पास भी धन हो और इसके लिए वह 'जुर्म' का रास्ता अख्तियार कर लेते हैं।

जुर्म की रोकथाम के लिए पुलिस है। लेकिन यह भी सच्चाई है कि जुर्म की रोकथाम प्रशासन, पुलिस व पब्लिक की भागीदारी के बिना नहीं हो सकती। दिल्ली जैसे शहर के जुर्म की रोकथाम, पुराने घिसे-पिटे तरीके से नहीं हो सकती। इसके लिए हमें नए तरीके खोजने होंगे। समस्या की तह तक जाना होगा और उसका समाधान करना होगा। लेकिन वह तरीके क्या हों। किस प्रकार प्रशासन व पब्लिक की भागीदारी लाई जाए इस पर विचार तो हुआ है लेकिन जितना होना चाहिए था, उतना नहीं हुआ है। क्या पुलिस स्टेशन इस विचार धारा के लिए ठीक स्थान है? यदि नहीं तो क्या कोई और ऐसी संस्था बनाई जा सकती है जहाँ इस कमी को पूरा किया जा सके।

कई वर्ष पूर्व राजधानी में ऐसा एक सेमिनार हुआ था। श्रीमती शीला दीक्षित, दिल्ली की मुख्यमंत्री ने भी कई विभागों के विभागाध्यक्षों व कर्मचारियों को बुलवा कर ऐसा ही एक सैमिनार करवाया था जहाँ पर भागीदारी द्वारा दिल्ली में जनकल्याण कार्यों को कैसे कराया जाए इस पर चर्चा हुई थी।

Acord (Asian Centre for Organization Research and Devlopment, C-126, Greater Kailash-1, New Delhi-48) के तत्वाधान में 16 से 18 मई 2002 तक श्री सत्य साई बाबा इन्टरनेशनल सेंटर, लोधी इंस्टीट्यूशनल ऐरिया नई दिल्ली में भी एक सेमिनार इस विषय पर हुआ था जिसमें दिल्ली सरकार के पाँच सरकारी विभागों के विभागाध्यक्षों और अधिकारीगणों ने मिल कर भागीदारी द्वारा दिल्ली की दशा सुधारने की तरफ प्रयास किया था यह पांच सरकारी विभाग थे, दिल्ली जल बोर्ड, एम.सी.डी., डी.डी.ए., डेसू व दिल्ली पुलिस। इसमें दिल्ली की जनता का प्रतिनिधत्व किया था दिल्ली की विभिन्न कालोनियों के स्थानीय आवास कल्याण समिति के जन प्रतिनिधियों ने। इन सबने मिल कर कुछ जन कठिनाइयों को चुना और अधिकारियों के समक्ष रखा और उनके समाधान के तरीके सुझाए। यह सब सुझाव आखरी दिन दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित के समक्ष रखे गये। अपराध से संबंधित विषय थे—

(1) अपराध की रोकथाम व पड़ोसी निगरानी योजना की सफलता
(2) घरेलू नौकरों की जांच पड़ताल
(3) अवैध शराब की बिक्री पर रोक
(4) सड़क सुरक्षा उपाय
(5) सार्वजनिक स्थानों पर सुरक्षा उपाय

इन सब विषयों पर विस्तृत चर्चा की गई और आखिर में यही निष्कर्ष निकला कि जनता की भागीदारी के बिना इन समस्याओं से छुटकारा नहीं पाया जा सकता है।

अपराध से छुटकारा भी हमें भागीदारी के तहत ही पाया जा सकता है। अपराध आम तौर पर पब्लिक में, पब्लिक के साथ ही होते है लेकिन फिर भी पब्लिक उन अपराध को देखते हुए भी, उनके खिलाफ सामने आने से घबराती है उनके बारे में गवाही देने से डरती है चाहे यह हमारे पुलिस तंत्र की कमी है या हमारी

अदालतों में होने वाले साक्ष्यों के तरीकों की कमी। आज आम नागरिक पुलिस से बचता है। सहयोग नहीं करता है क्योंकि वह समझता है कि पुलिस से सहयोग उसे कठिनाइयों में डाल देगा। इसके लिए वह अपना नुकसान तक उठा लेगा। यह एक भयावह स्थिति है। इसलिये दिन-दहाड़े अपराध होने पर कोई चश्मदीद गवाह सामने नहीं आता।

दिल्ली की एक विशेषता है कि यहाँ युवाओं की संख्या बहुत ज्यादा है और इसका प्रतिशत 20 है। उनमें आधे से अधिक अपने घर परिवार से दूर अकेले रहते हैं। यह न तो बच्चे हैं और न ही वयस्क। यह तो अधर में लटके हैं जिन्हें मामूली सी हवा का झोंका ही अपराध की ओर धकेल सकता है 8 साल से 16 साल के बीच के बच्चों की संख्या भी बहुत है। उनकी मजबूरी है कि उनके माँ-बाप, दोनों अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी निभाने के लिए काम पर जाते हैं और ये बच्चे अपना ज्यादा समय, गली कूचों में अकेले गुजारते हैं और धीरे-धीरे अपराध की ओर, अनजाने में बढ़ जाते हैं।

अब सवाल यह उठता है कि भागीदारी से इन 10 से 21 साल तक के युवाओं की समस्या का समाधान किया जा सकता है या नहीं! या सरकार इस समस्या का समाधान कर सकती है या नहीं। यह तो सर्वविदित है कि अकेली सरकार इस समस्या का हल नहीं निकाल सकती रिमान्ड होम, या चिल्ड्रन कोर्ट या नारी निकेतन या बाल सुधार गृह यह सब अपने आप में अप्रर्याप्त हैं। एक ऐसे ही सेमिनार में सुझाव आया था कि एक **सामाजिक सहायता स्टेशन** खोला जाए। जैसे पुलिस स्टेशन में आप पुलिस सहायता लेते हैं उसी प्रकार सामाजिक सहायता स्टेशन में सामाजिक सुरक्षा या सहायता मांगने वाले लोग जाएंगे। ऐसे लोग कौन हैं?

स्कूल व कालेज में ऐसा बच्चा हो जिसका व्यवहार स्कूल टीचर की समझ से बाहर हो और उसके माँ बाप दिल्ली से बाहर रहते हों या अनपढ़ हों तब टीचर क्या करें। किसे रिर्पोट करें? या कोई बच्चा नशा करता हो, गलत हरकतें करता हो। ऐसे बच्चे को पुलिस स्टेशन तो नहीं ले जाया जा सकता। ऐसे बच्चों के लिए सामाजिक सहायता स्टेशन चाहिए।

दिल्ली में ऐसी समस्याएं हैं तो उसके समाधान का जरिया भी है। मानसिक चिकित्सालय, स्वयंसेवी संस्थाएं, लोग इन कामों के लिए दान भी देते हैं। जरूरत है इन दोनों को आपस में मेल कराने की और यह सामाजिक सहायता स्टेशन ऐसे लोगों को आपस में मिलवा सकते हैं। ऐसे लोगों में विश्वास की भावना को भर सकते हैं। इन सामाजिक स्टेशनों का काम होगा ऐसे लेने वालों व देने वालों का डाटा अपने पास रखना और दोनों की आपसी जरूरतों को पूरा करना।

दिल्ली की पुलिस व्यवस्था को नौ जिलों में बांटा गया है। हरेक जिले में कम से कम एक सामाजिक सहायता स्टेशन होना आवश्यक है जिसका अपने जिले के पुलिस स्टेशनों से सीधा संबंध होना चाहिए। मान लीजिए एक लावारिस लड़की या औरत किसी भी पुलिस स्टेशन को मिलती है तो उस पुलिस स्टेशन से संबंधित सामाजिक सहायता स्टेशन को ऐसे मामले अपने हाथ में ले कर इस समस्या का समाधान करना चाहिए। प्रत्येक जिले के डीसीपी के आधीन ही यह सामाजिक सहायता स्टेशन काम करें। इसका पुलिस को ही सबसे अधिक फायदा होगा। क्या ऐसा होना मुमकिन है?

क्षमादान अच्छी सेहत का मूल मंत्र

अच्छी सेहत का मूलमंत्र है forgiveness यानि क्षमा दान अगर आप किसी को क्षमा करते हैं तो उस पर तो उपकार करते ही हैं, अपने ऊपर भी उपकार करते हैं। आपको पता है कि किसी भी समय कोई

भी व्यक्ति अगर गलती या अपराध करता है और आप उसे देख रहे होते हैं तो आपको गुस्सा आता है। आपको गुस्सा कैसे आता है। देखते ही आपकी आखें आपके मस्तिष्क को संकेत भेजती हैं जिससे मस्तिष्क अन्दोलित होता है और फिर आपका मस्तिष्क आपके हाथ पैर की मांसपेशियों को और आपके दिल को संकेत देता है जिससे आपकी मासपेशियों में अकड़न आती है। दिल की धड़कन तेज हो जाती है और आखें लाल हो जाती हैं। मुंह से गालीयां निकलती हैं, हाथ पैरों में कम्पन आता है जिसका नतीजा होता है कि आप सामने वाले से लड़ पड़ते हैं और आप और हम सब जानते हैं कि 'लड़ाई' के कितने नुकसान हैं।

उसके विपरीत अगर आप उसे माफ करते हैं तो आप इससे उसका भला तो करते ही हैं खुद अपना भी करते हैं। आप उसे माफ करके अपनी सेहत को नुकसान से बचाते हैं।

उस व्यक्ति ने जो गलती करी वह तो 'पास्ट' हो गई 'भूतकाल' हो गई और भूतकाल को आप वर्तमान में नहीं बदल सकते। भूतकाल के लिए आप अपना वर्तमान व भविष्य क्यों बिगाड़ें। उस व्यक्ति की गलती को देख कर अगर आप उससे लड़ेंगे, उसे धिक्कार देंगे तो हो सकता है उससे लड़ाई हो जाए जिससे आपका और उसका कोई लिटिगेशन हो जाए या आपको वह धमकी दे तो भी आप उसकी धमकी को याद रखेंगे इससे आपके मन की, मस्तिष्क की शान्ति भंग होगी। आपके खून का दौरा तेज होगा और अगर आप Hypertension के मरीज हैं तो यह आपकी सेहत को जबरदस्त नुकसान पहुंचा सकता है और आप पर "Heart Attack" का दौरा भी पड़ सकता है। क्योंकि इन सब क्रियाओं की प्रतिक्रिया होगी ही। इसलिए अगर कोई व्यक्ति आपके सामने कोई गलती भी करता है तो उसे क्षमा करें। अगर आप उसे यह एहसास करा सकें कि वह गलत है तो यह आपकी महानता है अगर एहसास नहीं दिला सकते तो उसे क्षमा कर दें। इसी में आपका बड़प्पन है।

आप सबको पता है कि आजकल दिल्ली में सड़कों पर रोड रैम बढ़ रहा है। मामूली सी बात पर लोग दूसरों से झगड़ा मोल ले लेते हैं। सुनीता गुप्ता का मर्डर इस बात का गवाह है। अगर आप में क्षमादान की प्रवृति है तो आप ऐसी परिस्थिति से अपना बचाव भी कर सकते हैं और दूसरों को भी बचा सकते हैं।

आजकल आत्महत्या की प्रवृति बढ़ रही है। आत्महत्या वह मनुष्य करता है जो भावावेश में बगैर सोचे समझे यह कदम उठा लेता है अगर वह केवल एक बार, यह सोच ले कि क्या आत्महत्या के अलावा भी कोई चारा है तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि वह आत्महत्या नहीं करेगा। 304 भा.द.सं. में Sudden Provocation द्वारा मर्डर की सजा है। यह Sudden Provocation क्या है? आपको आया अचानक गुस्सा जिसके वेग में आप कत्ल जैसा अपराध कर देते हैं। अगर आप में क्षमा भावना होगी तो आप कभी ऐसी परिस्थिति में अपने आपको नहीं पाएगें। इसलिए क्षमादान अत्यंत आवश्यक है। याद रखिए क्षमा करने वाला हमेशा बलवान होता है। निर्बल किसी को क्या क्षमा करेगा? इसलिए बलवान बनिए और क्षमा करना सीखिए। यह आपको भलाई की तरफ ले जाएगा और आपको बुराई से दूर रखेगा।

❐

निदेशक (अनुसंधान एवं विकास) की कलम से

द्वितीय अखिल भारतीय कारागार डयूटी मीट

राष्ट्रीय स्तर पर कारगार अधिकारियों को अपनी क्षमता दिखाने और संपूर्ण देश में कारागार अधिकारियों में सहयोग व मैत्री की भावना बढ़ाने के उद्देश्य से पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो ने गुजरात राज्य के कारगार निदेशालय के साथ मिलकर 12 से 14 मई 2007 तक अहमदाबाद में **द्वितीय अखिल भारतीय कारागार ड्यूटी मीट** का सफलतापूर्वक आयोजन किया। इसमें देश के आठ बड़े राज्यों अर्थात् आंध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडू तथा मेजबान गुजरात राज्य के लगभग 194 राजपत्रित व गैर राजपत्रित कारागार अधिकारियों ने सभी 8 स्पर्धाओं में भाग लिया इसमें निबंध, क्विज (प्रश्नोत्तरी), समस्या समाधान, बिनाशस्त्र की भिडंत, प्राथमिक उपचार व स्वास्थ्य देखभाल, छुपे हुए कैदियों को ढूंढना, वालीबाल तथा 100 मीटर की दौड़ जैसी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

इस तीन दिवसीय आयोजन के दौरान सभी प्रतिभागियों को व्यावसायिक उत्सुकता एवं खेल-भावना व एक दूसरे से बातचीत करने तथा ऐसी समस्याओं पर परस्पर चर्चा करने का अवसर मिला जिन्हें वे अपने कारगारों के प्रबंधन में महसूस करते हैं। यह आयोजन कारागार विभाग की राष्ट्रीय घटनाओं के संगठनात्मक एवं संचरनात्मक सहयोग की चेतावनियों को न केवल पूरा करेगी बल्कि कारागार प्रबंधन से संबंधित संरचनात्मक मुद्दों के लिए विशेष रूप से अपनी सार्वजनिक समस्याओं के सामान्य रूप में हल करने के लिए उन्हें संवेदनशील होने में भी सार्थक होगी।

इस बैठक के दौरान कारागारों में कैदियों की भीड़भाड़ की समस्या से निपटने के लिए केंद्रीयकृत प्रायोजित आधुनिकीकरण योजना के तहत कारागार ढांचे में सुधार के बारे में चर्चा करते समय यह सर्वसम्मत रूप में महसूस किया गया कि पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो को सुधारात्मक लक्ष्य की तत्काल प्राप्ति के लिए कारागारों का निर्माण करने के लिए सभी राज्यों के विभिन्न प्रकार के कारागारों की मॉडल साइट योजनाएँ उपलब्ध करानी चाहिए जोकि इस केंद्रीयकृत प्रायोजित आधुनिकीकरण योजना के अर्न्तगत राज्य सरकारों द्वारा निधियों के उपयोग को भी गति प्रदान करेगा।

इस बैठक का उद्घाटन गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी ने किया तथा समापन भाषण गुजरात सरकार में गृह मंत्री माननीय श्री अमितभाई शाह ने दिया। श्री आर. के. दिवाकर, कारागार महानिदेशक, मध्य प्रदेश ने भी प्रतिभागियों को संबोधित किया। पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के निदेशक (आर. एंड डी.) श्री आर. सी. अरोड़ा तथा सहायक निदेशक, डा. बद्री विशाल त्रिवेदी ने इस बैठक में सह-आयोजक अर्थात् पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के अवलोकनकर्ताओं के रूप में पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो का प्रतिनिधित्व किया तथा इस बैठक के दौरान हुई गतिविधियों में विजेताओं को पदक वितरित किए।

विभिन्न प्रतियोगिताओं में आठ राज्यों के कारागार अधिकारियों ने विभिन्न श्रेणियों में क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त कर स्वर्ण, रजत एवं कांस्य पदक प्राप्त किए।

भविष्य में इस प्रकार के आयोजनों को और अधिक परिष्कृत करने तथा युक्तिसंगत बनाने के लिए कुछ बहुमूल्य सुझाव प्राप्त हुए हैं। इन सुझावों को चर्चा एवं निर्णय हेतु इसकी केंद्रीय समन्वय समिति की आगामी बैठक में प्रस्तुत किया जाएगा।

❐❐❐

"प्रत्येक निष्पक्ष व्यक्ति यह स्वीकार करेगा कि हमारे देश के पुलिस बल ने देश की बड़ी सेवा की है। आपने न केवल देश में कानून और व्यवस्था को बनाए रखा है बल्कि आपके लिए यह बहुत गर्व की बात है कि हमारे देश की सीमाओं पर अथवा हमारे देश की सीमाओं पर स्थित कठिनाइयों वाले राज्यों में आपने निडरता से अपने जीवन को दावं पर लगाया है। तिब्बत की सीमा पर जो व्यक्ति चीनियों की गोलियों का शिकार बने वे पुलिस बल के सदस्य थे।"

—श्री लाल बहादुर शास्त्री

पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना के अंतर्गत ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

क्र. सं.	*पुस्तक का नाम*	*लेखक का नाम*	*मूल्य*
1.	**भारतीय पुलिस का इतिहास** (अतीत काल से मुगल काल तक)	डा. शैलेन्द्र चतुर्वेदी	54/-
2.	**भारत में केन्द्रीय पुलिस संगठन**	श्री एच. भीष्मपाल	65/-
3.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री रामलाल विवेक	65/-
4.	**ग्रामीण पुलिस : समस्याएं एवं समाधान**	श्री शंकर सरौलिया	70/-
5.	**विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका**	श्री आर.एस. श्रीवास्तव	105/-
6.	**स्वातंत्र्योत्तर भारत में पुलिस की भूमिका एवं जनता का दायित्व**	डा. कृष्णमोहन माथुर	210/-
7.	**मादक पदार्थ एवं पुलिस की भूमिका**	श्री हरीश नवल	—
8.	**सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में पुलिस की भूमिका का उद्‌भव**	प्रो. मीनाक्षी स्वामी	—
9.	**समग्र न्याय-व्यवस्था में पुलिस का स्थान एवं भूमिका**	श्री ललितेश्वर	600/-
10.	**पुलिस दायित्व एवं नागरिक जागरूकता**	डा. सी. अशोकवर्धन	568/-
11.	**महिला और पुलिस**	श्रीमती अमिता जोशी	100/-
12.	**मानवाधिकार और पुलिस**	डा. जी.एस. वाजपेयी	346/-
13.	**नई आर्थिक नीति एवं अपराध**	डा. अर्चना त्रिपाठी	183/-
14.	**बाल अपराध**	डा. गिरिश्वर मिश्र	225/-
15.	**न्यायालयिक विज्ञान की नई चुनौतियां**	डा. शरद सिंह	200/-
16.	**मानवाधिकार संरक्षण एवं पुलिस**	श्री रामकृष्ण दत्त शर्मा एवं डा. सविता शर्मा	510/-
17.	**सामुदायिक पुलिस व्यवस्था**	डा. तपन चक्रवर्ती डा. रवि अम्बष्ट	205/-
18.	**संगठित अपराध**	श्री महेन्द्र सिंह आदिल	313/-
19.	**पुलिस कार्यों का निजीकरण**	डा. शंकर सरौलिया	330/-

ब्यूरो द्वारा प्रकाशित उपरोक्त सभी पुस्तकें, नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054 से प्राप्त की जा सकती हैं।

लेखकों से निवेदन

यदि पुलिस विज्ञान में प्रकाशन के लिए आपके पास पुलिस, शांति-व्यवस्था, अपराध न्याय-व्यवस्था आदि पर कोई लेख है या आप लेख लिखने में सक्षम हैं तथा रुचि रखते हों तो अपने लेख यथा शीघ्र भेजें। अच्छे लेखों को प्रकाशित करने का हमारा पूरा प्रयास रहेगा। लेख टाइप किया होना चाहिए तथा इसके संबंध में फोटो, चार्ट आदि हों तो उन्हें भी साथ भेजना चाहिए। प्रकाशित होने वाले लेखों पर समुचित पारिश्रमिक की व्यवस्था है।

यदि आपने पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर उपयोगी पुस्तक लिखी है और आप पुलिस विज्ञान में उसे कड़ी के रूप में प्रकाशित करवाना चाहते हैं तो हमें पांडुलिपि भेजें।

यदि आप कर्मियों के कार्य को लेकर कहानी या अन्य किसी विधा में लिखने में रुचि रखते हों तो हम ऐसे साहित्य का भी स्वागत करेंगे।

यदि पुलिस विज्ञान से संबंधित किसी हिन्दीतर भाषा के उच्चस्तरीय लेख का अनुवाद किया हो और आपके पास अनुवाद प्रकाशन का कापीराइट हो अथवा उनके कापीराइट की आवश्यकता न हो तो ऐसे लेख/सामग्री भी प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। प्रकाशित लेखों पर समुचित मानदेय देने की व्यवस्था है। लेख भेजते समय यह प्रमाणित करें कि लेख मौलिक/अनूदित व अप्रकाशित है तथा इस पर कोई मानदेय नहीं लिया गया है। अनूदित लेख के कापीराइट के संबंध में भी सूचित करें।

विषय आदि के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पुलिस विज्ञान की नमूने की प्रति मंगाने के लिए संपर्क करें :--

संपादक
पुलिस विज्ञान
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, चौथी मंजिल
सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003
फोन : 24360371 एक्स. 253

वैब साइट — डब्लू डब्लू डब्लू.वीपीआरडी.जीओवी.इन
डब्लू डब्लू डब्लू. वीपीआरडी.एनआईसी.इन

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, ब्लाक नं. 11, 3/4 मंजिल, सी.जी.ओ. कम्प्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 द्वारा प्रकाशित तथा प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, (हरियाणा) द्वारा मुद्रित।

पुलिस विज्ञान

(त्रैमासिक पत्रिका)
जुलाई-सितंबर, 2007

सलाहकार समिति

डा. किरन बेदी
महानिदेशक

रमेशचंद्र अरोड़ा
निदेशक

संजय बेनिवाल
उपनिदेशक

डा. बद्री विशाल त्रिवेदी
सहायक निदेशक

संपादन सहयोग : **दिवाकर शर्मा**

पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
ब्लाक-11, 3 एवं 4 मंजिल
सी.जी.ओ. कम्पलैक्स, लोदी रोड
नई दिल्ली-110003

वर्ष - 24 अंक 100 जुलाई-सितंबर, 2007

वर्ष - 24 अंक 100 जुलाई-सितंबर, 2007